JULY to SEPTEMBER 2008
YEAR 5th : ISSUE IIIrd

जुलाई से सितम्बर 2008
वर्ष पंचम : अंक तृतीय

GYAN PRABHA

(Quarterly)

ज्ञान प्रभा

(त्रैमासिक) 10

सम्पादक मण्डल

सुरेश चन्द्र-प्रबन्ध सम्पादक
डॉ॰ धर्मवीर सेठी-सम्पादक

Editorial Board

Suresh Chandra-Managing Editor
Dr. Dharam Vir Sethi-Editor

मूल्य : 30/- रुपये

वार्षिक मूल्य 100/- रुपये

भारत विकास परिषद् प्रकाशन

इस अंक में...

1.	अपनी बात		4
2.	वैदिक विनय		6
3.	Keep in touch	❑ Dr.Anjanee	7
4.	अच्छे नेतृत्व से ही राष्ट्र का विकास	❑ स्वामी सत्यमित्रानन्द	9
5.	न्यायपालिका और पवित्रता	❑ ए.पी.जे. अब्दुल कलाम	12
6.	न्यायपालिका पर भारी बोझ	❑ न्यायमूर्ति वाई.के. सब्बरवाल	15
7.	न्यायिक सुधार के उपाय	❑ जगमोहन	19
8.	कितनी स्वतंत्र है हमारी न्यायपालिका	❑ डॉ॰ वन्दना मिश्रा	22
9.	इस्लाम एक, कानून अनेक	❑ मुजफ्फ़र हुसैन	26
10.	Accountability of Judges	❑ Prashant Bhushan	30
11.	Legal Nightmare	❑ K.M. Sharma	36
12.	Integrity of Judges, Lawyers Vital	❑ Dhananjay Mahapatra	40
13.	Modernizing the Legal and Judicial Institution in India	❑ Jay Chauhan	43
14.	Justice Delayed	❑ Bhaskar DC	51
15.	भीड़ में कोई आदमी नहीं था	❑ बनेचन्द मालू	54
16.	लड़की के विकास में अवरोध कमतर आकलन	❑ अंजु दुआ जैमिनी	55
17.	महात्मा ज्योतिबा फुले	❑ आर. के. श्रीवास्तव	59
18.	युवा नव धनाढ्यों के लिए एक वित्तीय परियोजना	❑ अनुपमा सिंहल	63
19.	स्पांडिलाइटिस नहीं है अब लाइलाज	❑ डॉ॰ यतीश अग्रवाल	67
20.	शेर और बकरी	❑ अशोक भाटिया	70
21.	Gayatri Mantra	❑ Dr. M. P. Sharma	72
22.	धर्म	❑ चन्द्र किशोर मदन	77
23.	The power of 3 little words		78
24.	Reading and writing habits are dying	❑ Prof. S. Dandapani	80
25.	21 Reasons to read books & magazines		83
26.	A tourist and a pilgrim	❑ Dr. Pradeep Kumar	84
27.	Nail in the fence	❑ Neeraj Gupta	87
28.	The pleasures of grandparenting	❑ Suresh Chandra	89
29.	The quest for greatness		92
30.	पाठक नामा		94

अपनी बात

कहते हैं भगवान के घर में देर है अन्धेर नहीं! अर्थात् वहाँ न्याय अवश्य मिलता है चाहे कुछ देर से ही सही। परन्तु आधुनिक युग के भारतीय परिप्रेक्ष्य में न्याय और तत्सम्बन्धी विधाओं का क्या स्वरूप है, इस विषय को लेकर 'ज्ञान प्रभा' का प्रस्तुत अंक संजोया गया है।

इस के लिए आरम्भ में प्रभु स्मरण भी आवश्यक है जो वेद की ऋचाओं में उपलब्ध है। राष्ट्र का शक्तिशाली नेतृत्व होगा तभी विकास और न्याय भी बात सोची जा सकती है। स्वामी सत्यमित्रानन्द जी की लेखनी इसी भाव को उजागर करती है। पूर्व राष्ट्रपति ए.पी. जे. अब्दुल कलाम द्वारा न्यायपालिका की पवित्रता पर बड़े सुन्दर ढंग से चर्चा की गई है। इसी कड़ी में क्या राजनीति के चंगुल से हमारी न्याय व्यवस्था बची रह सकती है, उसके सुधार के क्या उपाय हो सकते हैं जैसे गम्भीर विषयों पर भी चिन्तन हुआ है। प्रश्न उठता है कि न्याय के रक्षक अपने धर्म को निभाते हुए कितने ईमानदार हैं, इस पर तो सवालिया निशान ही लगा रहता है। यह स्थिति अपने आप में गम्भीर है। एक अन्य लेख में न्याय व्यवस्था का आधुनिकीकरण कैसे हो यह बताने का भी प्रयास किया गया है। अभिप्राय यह कि न्याय की खोज में एक साधारण व्यक्ति कैसे पिसता चला जा रहा है इसकी बानगी विषय से सम्बन्धित लेखों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराई गई है।

शायद इसी लिए एक कविता के माध्यम से भीड़ में एक आदमी की तलाश की गई है। धर्म के कुछ पहलुओं पर भी विद्वान् लेखकों ने अपनी कलम चलाई है और एक इस्लाम के अनेकों कानूनों की भी गहन चर्चा की गई है।

भ्रूण हत्या और बेटी का महत्व आदि गम्भीर विषय को लेकर लेखिका ने समाज के प्रबुद्ध वर्ग को झकझोरने का काम किया है। महात्मा फुले ने समाज का नेतृत्व कैसे किया लेख भी प्रेरणादायी है। स्पांडिलाइटिस के कारण और निदान क्या हैं आज के स्ट्रेस भरे वातावरण में यह जानना भी आवश्यक हो गया है।

प्रणव-मंत्र का विशेष महत्व है, सभी मंत्रों का निचोड़ : प्रस्तुत लेख का अवश्य मन्थन करें। समाज के अन्य घटकों से अपना सम्पर्क आज के यान्त्रिक युग में कैसे सुदृढ़ किया जाए, पढ़िये Keep in touch में! बच्चों में पढ़ने और लिखने की आदत डालें और आप यात्रा पर निकलते हैं तो भी आपके लिए इस लेख में जानकारी दी गई हैं। क्रोध के परित्याग के लिए? प्रेरक प्रसंग है और मूल से ब्याज अच्छा लगता है यह भाव Grand parenting से जाने जा सकते हैं। वित्तीय परियोजना के कुछ सूत्र भी जोड़ दिए गए हैं।

सुधी पाठकों को हमारा यह मिला जुला प्रयास कैसा लगा उनकी प्रतिक्रियाओं से ही हम जान पाएँगे।

प्रभु का आशीष और पाठक वर्ग की शुभ कामनाएँ हमारा सम्बल बनेगीं, ऐसा विश्वास है। **-ध.व.स**

स्वतंत्रता दिवस पर परिषद् परिवार की ओर से समस्त पाठकों का अभिनन्दन।

परिषद् परिवार की ओर से सभी को रक्षाबन्धन व कृष्णजन्माष्टमी पर अनेकानेक शुभकामनाएँ।

वैदिक विनय

ओ३म् विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव।

यद्भद्रं तन्न आसुव॥ [यजुर्वेद 30-3]

विश्वानि - सब, All ; **देव**-सुखों के दाता, Bestower of happiness; **सवितः** -जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता Creator of the Universe; **दुरितानि** - दुर्गुणों को, Vices; **परासुव** -दूर कीजिए, Dispel। यत् जो, Whatever; **भद्रम्** -कल्याणकारक, blessed and good; **तन्** - उसे, That; **नः** - हमें, to us; **आसुव** -प्राप्त कराइए, Provide

हे प्रकाशमय देव, दिव्य गुण दाता प्रभुवर।

प्राणिमात्र के पिता, नियन्ता, नित्य विभाकर।।

दूर शीघ्र सब करो, प्रभो! कुविचार हमारे।

दुर्गुण, दुःख, दुर्व्यसन, दैन्य दल दुर्नय, सारे।।

प्रभु! जो कुछ भी कल्याणमय, सुखमय, मङ्गलमूल हो।

वह सब प्रदान कीजिए पिता, जो सुत के अनुकूल हो।।

Oh Lord, God Almighty, Creator of the Universe, and dispenser of true happiness! We beseech thee to dispel all our miseries (vices and evil propensities) and bestow upon us what is blessed and good.

पुनश्चः महर्षि स्वामी दयानन्द का सर्वप्रिय मन्त्र

KEEP IN TOUCH!

● **Dr. Anjanee**

The first guiding principle of Bharat Vikas Parishad is Sampark (सम्पर्क) i.e. contact. In the modern age this aspect of life has taken a new twist. How? The writer thus explains.

-Editor.

Networking is a powerful way of building personal and professional relationships. It is a process of actively fostering contacts and creating ways to disseminate information. It's a give and take process. Yet, how many of us take this seriously, specially in the formidable years of our career. We just don't seem to have the time or the inclination, as it seems to require too much of an effort.

Further, cultural differences set the tone of how we should network. Networking, in the Indian context during earlier times might have had a negative connotation, not any more though, in fact, not networking in today's scenario might perhaps be detrimental to career development. On the contrary, Americans view the person who is networking, as being extremely focused. Being perpetually short on time, networking happens at a brisk pace at business and social gatherings for them.

At the workplace, networking is indeed, a big deal. Many successful job seekers claim that networking has made all the difference for them. One of the objectives in networking is to obtain referrals. Ideally, you would like names to be volunteered as part of the conversation. However, if they are not, you must request them in order to continue your

search. Request names of other contacts who might be willing to provide further advice and information.

There are many ways to identify networking contacts- your college alumni association or career office networking lists, your own extended family, your friends' parents and other family members, your professors, advisors, tutors, your former bosses and family members' bosses, members of clubs, religious groups and other organizations to which you belong and of course your friends.

At social events resist the temptation to just hang around with friends! Capitalize on the opportunity, by introducing yourself and begin establishing rapport with as many people as possible-be more interested than interesting. Memorize a few conversation openers if you think you are likely to get tongue tied or have clammy hands. All the effort and time is well spent! A little care can go a long way in improving your comfort level with networking. Thank the contact and make plans to meet again. This process of nurturing contacts is perhaps as important, as the benefits from networking, may not always be immediate and apparent, but then, remember, it's a small world! So keep in touch!

-The writer is Professor of Communication, at the Management Development Institute, Gurgaon.

अच्छे नेतृत्व से ही राष्ट्र का विकास

❑ **स्वामी सत्यमित्रानन्द जी**

स्वतंत्रता के सूर्य के आगमन पर हमने कल्पना की थी कि हमारा देश निश्चित् रूप से विकास के पथ पर बढ़ेगा। विकास हुआ भी। उच्च अट्टालिकायें बन गई हैं, सेतुओं के निर्माण हुए, उद्योगों की स्थापना हुई। लोगों को ऐसा लग रहा था, सचमुच देश विकास के पथ पर अग्रसर है, लेकिन उस विकास के पीछे मानवीय दुर्बलताओं से घिरे हुए नेतृत्व प्रदान करने वाले लोगों ने अपने दिव्य चरित्र के द्वारा इस राष्ट्र को विकास के पथ पर चलता हुआ राष्ट्र सिद्ध करने में असमर्थता दिखाई, नहीं तो हम सब लोगों को ऐसा कैसे दिखाई पड़ता कि इस देश के सामान्य जनों द्वारा उच्च पदों पर बिठाये जाने वाले लोग उनके साथ ही विश्वासघात करेंगे। ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

विकास और विनाश में एक अक्षर का अन्तर है। यदि 'क' हट जाये और 'न' आ जाय तो विनाश हो जाता है। यदि 'क' बना रहे तो विकास हो जाता है। संस्कृत भाषा में 'क' को ब्रह्म दृष्टि से ही देखते हैं। हमारी विशेषता, लौकिक उत्कर्ष के साथ-साथ आध्यात्मिक उत्कर्ष की भी निश्चित् की गई। जो सारे संसार में एक ही परमात्मा को देखने का यत्न करता रहा हो, तो ऐसा समृद्ध देश भाषा के नाम पर, जाति के नाम पर, छोटे-छोटे समुदायों के नाम पर, मण्डल बना-बनाकर केवल अपना चिन्तन करने लगे। यह भारत के चिन्तन के कितनी विरुद्ध बात है।

हमने अनेक जातियों को अपने भीतर समाविष्ट किया-

किरातहूणान्ध्रपुलिन्द्रपुल्कशाः

आभीरकङ्क.यवनखसादयः।

शुद्धयन्ति तस्मै प्रीविष्णवे नमः॥

हमारी पाचन शक्ति इतनी तीव्र रही कि केवल अपने ही देश के नहीं किरात, हूण, पुलिन्द, पुल्कश आदि अनेक जातियों को समाविष्ट किया। यह श्लोक पाँच हज़ार वर्ष पूर्व विश्व के सबसे बड़े चिन्तक महर्षि वेदव्यास ने लिखा। हमने इन सबको अपने भीतर ऐसा आत्मसात् किया कि उनके मन में कभी विचार ही नहीं आया कि भारतीय के अतिरिक्त वे कुछ और हैं।

अपने स्वार्थों में जुड़ा हुआ यह समाज पुण्य की प्राप्ति के लिए नाना प्रकार की विधियों का पालन भले ही न करे, लेकिन अन्त:शुद्धि के लिए सेवा का मार्ग न अपना सके तो वे विधियाँ लौकिक प्रशंसा तो दिला सकेंगी, अन्तर की शुद्धि, अन्तर्यामी का सान्निध्य मुझे और आपको प्राप्त नहीं होगा। आज इस देश को सेवा की आवश्यकता है, हमारे भीतर आप्तकामत्व जागे, आत्मसंतोष जागे। आत्मसंतुष्टि सेवा और संस्कार के द्वारा जितनी प्राप्त होती है, उतनी और किसी से प्राप्त होती नहीं।

यदि आप संस्कार जीवित रखेंगे तो परमात्मा को अवतार के लिए विवश होना पड़ेगा। परमात्मा आना चाहता है। क्षमा करिये मेरे यहाँ नहीं आयेगा। जब भी आयेगा आप के यहाँ आयेगा। आप गृहस्थ हैं। भगवान ढूँढ़ रहा है कि मैं आऊँ, लेकिन कोई दशरथ नहीं मिल रहा है। कोई कौशल्या, कोई देवकी नहीं मिल रही है। वसुदेव नहीं मिल रहा है। जीजाबाई नहीं मिल रही है। नहीं तो शिवाजी, राम-कृष्ण का अवतार होता। कुछ दम्पतियों को अपने संयमी जीवन से कौशल्या, देवकी बनना पड़ेगा। आपकी कोख से जन्मे भगवान का दर्शन, नीराजन करने के लिए संत समाज आयेगा।

जब कभी हम इतिहास को पलटकर देखते हैं कि महर्षि दधीच के पास देव-समुदाय जाकर प्रार्थना करता है कि आपके देह की आवश्यकता है। यदि आप देह-दान नहीं करेंगे तो आपकी अस्थियों से बनने वाले वज्र के बिना राक्षसों का विनाश संभव नहीं। महर्षि दधीच ने कहा, ''मैं समाधि में जाता हूँ, ऐसा पशु लाओ जो मेरे शरीर का मांस चाट ले। शेष बचे समस्त अस्थियों के ढाँचे को ले जायें।'' इतिहास का यह पावन पृष्ठ हमारे सामने है। एक ऋषि को कोई आवश्यकता नहीं थी, अपने देह की। उसके प्रति श्रद्धा रखने वाले बहुत लोग थे, जो यह कह सकते थे कि तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार नहीं करेंगे। कोई बाध्य नहीं कर सकता था, लेकिन करुणा की सीमा, परोपकार की अवधि, जीवन में अपना सब कुछ देकर भी विश्व का रक्षण करने के

लिए मंगल की परिकल्पना थी। सत्त्व की सीमा महर्षि दधीच में दिखाई पड़ती है। उन्होंने हँसते हुए अपने शरीर का दान किया। असुरों का विनाश हो गया।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा, श्रेष्ठजन जैसा आचरण करते हैं, बाकी लोग उनका अनुसरण करते हैं। इसलिए हम सब लोगों को उन लोगों के आदर्श देखने चाहिएँ जो गरीबी में भले पले हों, लेकिन अपने जीवन के सिद्धांतों का पालन करने का यत्न कर रहे हों। मैं आप सबसे निवेदन करूँगा कि गाँव में ऐसे लोगों को ढूँढ़कर ऐसे सम्मेलनों में लाएँ जो अध्यापक रहे हों, जो छोटे कार्य या किसानी करते हों, लेकिन भूलकर भी जिन्होंने अपनी ईमानदारी के साथ सौदा न किया हो। ऐसे लोगों का सम्मान फिर से इस देश में होना चाहिए। ईमानदार आदमी को भी लगेगा कि मेरी उपयोगिता है। मैं एक आदर्श हूँ। मैं समाज को तिल-तिल जलकर भी कुछ दे सकता हूँ। अँधेरे से लड़ सकता हूँ। सामान्य प्रकाश में बहुत बड़ा बल होता है।

'' दीप से दीप जलाने का कार्य निरन्तर चलना चाहिए। भले हम खद्योत न बनें, दीपक बनें, लेकिन अंधकार से हमारा संघर्ष चलते रहना चाहिए। **संघर्ष जीवन का दूसरा नाम है।** संघर्ष यदि अप्रिय होता तो भगवान श्रीकृष्ण को कुरुक्षेत्र के मैदान में कभी युद्ध कराने की बात नहीं करनी चाहिए थी। युद्ध के समय एक बात अवश्य स्मरण रहनी चाहिए-**मामनुस्मर युध्य च**- मेरा स्मरण करो और फिर बुराइयों से लड़ो। बुराइयों से लड़ने वाला कभी किसी से द्वेष नहीं करेगा। व्यक्ति के साथ उसकी बुराइयों के कारण मतभेद हो सकते हैं; लेकिन व्यक्ति स` नहीं। आज जो बुरा है वह कल वाल्मीकि हो सकता है। न किसी व्यक्ति के साथ द्वेष, न किसी समुदाय के साथ द्वेष। यदि कहीं बुराइयाँ हैं, तो उन्हें भगवान का कार्य समझकर मिटाने के लिए अग्रसर होना चाहिए।

[स्वामी जी द्वारा दिये गये एक व्याख्यान के संपादित अंश-सं.]

The administration of justice is the firmest pillar of government.

न्यायपालिका और पवित्रता

❑ **ए. पी. जे. अब्दुल कलाम**

मैंने देश की न्यायपालिका और विधि प्रक्रिया का अध्ययन किया है। प्रत्येक नागरिक चाहता है कि न्याय प्रणाली पवित्र हो। मेरे अध्ययन से पता चलता है कि संपूर्ण प्रणाली अनेक तत्वों पर निर्भर है। ये हैं:-

1. राजनैतिक नेता।
2. कानून निर्माता-सांसद और विधायक।
3. नागरिक।
4. प्रशासन।
5. पुलिस।
6. वकील और कानून के स्कूल।
7. जज-सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय, निचली अदालतें।
8. मीडिया।

प्रत्येक अन्तरफलक का पारदर्शी और पवित्र होना आवश्यक है, तब जाकर न्यायालय से समन्वित समाधान निकल सकता है।

1. राजनैतिक नेता : कानून का आदर करें और देश के कानून को तोड़ने-मरोड़ने के लिए सत्ता की प्रक्रिया का उपयोग न करें। समाज के समक्ष राजनैतिक नेताओं को उदाहरण पेश करना चाहिए।

2. कानून निर्माता : नियमों को सरल बनाएँ, पुराने अनुपयोगी कानूनों को हटाएँ। संपूर्ण प्रणाली को ऐसा बनाएँ कि न्याय शीघ्रातिशीघ्र और निष्पक्ष ढंग से हों।

3. नागरिक : दूसरों के अधिकारों का मान-सम्मान करें और कानूनी

प्रणाली का उपयोग अच्छे प्रयोजन के लिये करें। तुच्छ, स्वार्थवश अथवा सत्ता की राजनीति के लिए इसका दुरुपयोग न करें।

4. प्रशासन : प्रशासन बदलती अपेक्षाओं और परिवर्तनों के अनुरूप अपने को सक्रिय बनाएँ, तुरंत प्रतिक्रिया दे और इसके साथ नवीनता भी लाए। प्रशासन को ई-गवर्नेंस जैसी टैक्नॉलोजी का उपयोग कर सभी मामलों में तुरंत निर्णय लेने चाहिएँ।

5. पुलिस : पुलिस व्यवस्था और कार्य कलाप ऐसे होने चाहिएँ कि अच्छे नागरिकों का उनमें विश्वास जमे और वे उनसे किसी प्रकार का भय न खाएँ। न्याय देने में उन्हें किसी के दबाव में आकर झुकना नहीं चाहिए। ईमानदार अधिकारियों द्वारा उनके कर्त्तव्यपालन में सहायता करनी चाहिए। इसके साथ ही चूँकि पुलिस अधिकारियों को समय का ध्यान न रखते हुये अपना कर्त्तव्यपालन करना पड़ता है, उनके वेतन, पारिश्रमिक और सुविधाओं का पुनरावलोकन होना चाहिए और उन्हें उनकी ज़िम्मेवारियों के अनुकूल बनाया जाना चाहिए।

6. वकील : कानून का पेशा केवल व्यापार ही नहीं है परंतु इसके साथ सत्य को उजागर करने की ज़िम्मेवारी भी है। इसलिए उन्हें पेशेगत ईमानदारी और सिद्धांतों का अनुपालन करना चाहिए। कानून के विद्यालयों को चाहिए कि वे शुरू से ही उनमें इन मूल्यों की प्रतिष्ठापना करें। वरिष्ठ वकीलों को आदर्श भूमिका प्रस्तुत करनी चाहिए।

7. जज-सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय, ज़िला और अन्य अदालतें : प्रभावित पार्टियों की महिमा और प्रतिष्ठा के स्तर का ध्यान रखे बिना उन्हें प्रयत्न करना चाहिए कि सत्य की जीत हो। नागरिकों के लिए न्याय का शीघ्र मिलना अत्यधिक महत्व रखता है। ऐसी व्यवस्था बनाएं कि समाजगत अपराधों से निपटा जा सके। अदालतों का यह स्वभाव है कि वे कानून के तकनीकी पहलू पर ही आरोपी को संदेह का लाभ दे देती हैं। यहाँ मुझे नानी पालकीवाला का सुप्रसिद्ध कथन याद आता है ''कानून कहीं होता है और न्याय कहीं और होता है''।

8. मीडिया : मीडिया को सक्रिय और सावधान रहना चाहिए। परंतु उन्हें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि वे भावुक न हों अथवा मुद्दों पर पहले ही अपना निर्णय लेने का प्रयत्न न करें।

न्यायपालिका के लिये मिशन : उच्च न्यायालयों को मैं एक मिशन का सुझाव देना चाहूंगा। इस मिशन के एक भाग के रूप में कानून और न्याय के अधिकारी व्यक्तियों द्वारा 1990 से 2005 के बीच कर्नाटक की विभिन्न अदालतों द्वारा जो पथान्वेषी निर्णय दिये गये हैं उनका विश्लेषण करें। इसके साथ ही यह देखना भी ज़रूरी है कि जन कल्याण की दृष्टि से इन निर्णयों का क्या महत्व है और वातावरण संरक्षण, नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा और राष्ट्रीय आर्थिक संस्थानों की सुरक्षा की दृष्टि से सामाजिक सामंजस्य स्थापित करने में इन निर्णयों का क्या महत्व है। इस अध्ययन के परिणाम कानून के विद्यार्थियों और कानून के योजनाकारों के दिशा निर्देश के लिए उपयोगी रहेंगे।

न्यायपालिका के अधिकारियों की गुणवत्ता : देश के स्वतंत्रता आन्दोलन में अनेक सुविख्यात कानूनी विशेषज्ञों का व्यक्तिगत और सामूहिक योगदान रहा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि कानूनी और न्यायिक पेशे में गुणी व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया जाए। इसके लिए निरंतर प्रशिक्षण और शिक्षा के साथ टैक्नॉलोजी का ज्ञान भी आवश्यक है। सूचना टैक्नोलॉजी जैसे उपकरण एवं दूरस्थ शिक्षा सर्वोत्तम विधि वेत्ताओं की प्रतिभा को तीव्रतर करने में केंद्रीय भूमिका निभा सकती है। विकसित भारत की न्यायिक प्रणाली के लिये इस बात की भी आवश्यकता है कि अनिवार्य निर्णायक क्षेत्रों को निर्दिष्ट किया जाए।

उपसंहार : हमारी न्यायपालिका की शानदार परंपरा रही है। इसने हमारे लोकतंत्र को सार्थक मायने और स्वस्थ प्रवृत्ति प्रदान की है। अपनी न्यायिक प्रणाली पर हम सभी गर्व कर सकते हैं। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि भविष्य में हमारी न्यायिक प्रणाली अधिक सुदृढ़ होगी जिससे नागरिकों की आस्था न केवल यथावत् बनी रहेगी अपितु त्वरित न्याय के प्रति उनकी जो आशाएँ और आकांक्षाएं हैं वे भी पूरी होंगी।

[श्री कलाम भारत के पूर्व राष्ट्रपति हैं।]

न्याय पालिका पर भारी बोझ

❑ न्यायमूर्ति वाई. के. सब्बरवाल

हमारी न्यायिक प्रणाली पर कार्य का जो भारी बोझ है, उसके कारण इस प्रकार हैं:-

1. अधिकारियों/कर्मचारियों की कमी।
2. ढांचागत कठिनाइयां और
3. प्रक्रिया से होने वाले विलम्ब।

मुकदमें करने वालों में न्याय देर से मिलने के कारण जो निराशा और हताशा की भावना बढ़ रही है उससे जनता का न्यायपालिका के प्रति विश्वास कम हो रहा है। हम इस विश्वास की कमी को अधिक सहन नहीं कर सकते। इसके साथ ही अधिकारों की त्वरित प्राप्ति के लिये कानून से ऊपर उठकर तरीके अपनाए जा रहे हैं और उपाय ढूंढे जा रहे हैं। वह उस ''कानून के शासन'' के लिये अच्छे शकुन नहीं है, जिसकी कि हम सबने शपथ ली हुई है। मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने 1963 में जेल के अंदर से लिखा था, ''कहीं भी यदि अन्याय होता है तो वह सर्वत्र न्याय के लिए खतरा उत्पन्न करता है।'' न्याय के समक्ष जो अनेकानेक संकट उत्पन्न हो रहे हैं, उन्हें रोकने में भारत आज भी पूर्णत: सक्षम नहीं है।

भारत राज्य, जैसा कि अन्य लोकतंत्रीय राजनीति में होता है, सत्ता के विभाजन के सिद्धांत पर आधारित है। प्रत्येक अंग की अपनी निश्चित् ज़िम्मेदारियां है। परंतु, मेरे विचार से, प्रत्येक अंग की सभी गतिविधियों का निष्कर्ष भारत की जनता को न्याय दिलवाना ही है। अलेक्जेंडर हेमिल्टन ने इसे इन शब्दों में सुन्दर ढंग से कहा है:

''सरकार का अन्तिम लक्ष्य न्याय दिलाना है। सभ्य समाज का अंतिम लक्ष्य भी यही है। सदा से न्याय के लिए ही प्रयत्न हुआ है और तब तक होता

रहेगा, जब तक कि यह मिल न जाए, अथवा इस प्रयास में स्वतंत्रता ही क्यों न खो जाए।''

राज्य के तीनों ही अंग एक-दूसरे के पूरक हैं और उनसे आशा की जाती है कि वे मिलकर काम करेंगे। इसी बात को ध्यान में रखकर कुछ वर्ष पहले कार्यकारी अध्यक्षों और न्यायपालिका के अध्यक्षों की संयुक्त कांफ्रेंस की परम्परा शुरू की गई थी, जिससे कि ऐसा मंच मिले जहां कि विचारों का आदान-प्रदान हो सके और राज्य के प्रत्येक अंग से सहायता लेकर प्रभावकारी ढंग से न्याय दिया जा सके।

बढ़ती हुई मुकदमों की बकाया संख्या का एक कारण हम सबको मालूम है। ''जजों और आबादी का अनुपात'' अत्यधिक अपर्याप्त है। इस विषय पर कई कमीशनों और कमेटियों और न्यायिक आदेशों के द्वारा प्रकाश डाला जा चुका है। सभी स्तरों पर जजों की संख्या में बढ़ोत्तरी करने की तुरंत आवश्यकता है। बढ़ोत्तरी भले ही चरणबद्ध रूप में की जाए परंतु इसकी शुरूआत तुरंत होनी ज़रूरी है।

इस मुद्दे से जुड़ा हुआ मुद्दा जजों के रिक्त स्थानों को भरने की प्रक्रिया से संबंधित है। अनुभव से पता चला है कि इसमें काफी देरी लगती है। हम उस सुझाव की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा में हैं जिसमें निचली न्यायिक सेवाओं की भर्ती की ज़िम्मेदारी पब्लिक सर्विस कमीशनों की बजाय हाई कोर्ट को देने से है। कुछ देशों में यही परंपरा एवं वहां यह पद्धति बहुत अच्छे ढंग से कार्य कर रही है।

हम सराहना करते हैं कि केंद्रीय सरकार ने अदालतों के ढांचे का स्तर सुधारने और सरलीकरण करने के लिए बनी ''दस वर्षीय भविष्य की योजना'' में विशेष अभिरुचि ली है। न्यायपालिकाओं के लिए समुचित सुविधाओं विशेषकर पिछड़े इलाकों में मुफस्सिलों और ताल्लुका स्तर पर अधिकांश अदालतें अंधेरे, खण्डहर हो गए मकान के ढांचों में काम कर ही हैं जहां स्वास्थ्य-सफाई की सुविधा नहीं है परन्तु जजों को काम करना होता है। जब जजों की अवस्था ऐसी है तो वकीलों और मुवक्किलों तथा गवाहों की क्या दशा होगी, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। भारत 21वीं शताब्दी में आर्थिक उन्नति के पथ पर अग्रसर है। दुनिया भर में अदालतों की जो स्थिति है, उसके अनुरूप हमें भी अदालतों के लिए आधुनिक स्तरों के

अनुरूप व्यवस्था बनानी चाहिए और इसके लिए अपेक्षित धन की व्यवस्था 'योजना' निधि में से की जानी चाहिए।

इस संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि उच्च न्यायालयों की वित्तीय स्वायत्तता का मुद्दा प्रस्ताव रूप में बहुत दिनों से लंबित पड़ा है। यद्यपि बढ़ती मुकदमों की शेष संख्या के लिए न्यायपालिका को ज़िम्मेदार बताया जाता है, परंतु उसका कोई नियंत्रण न तो वित्तीय संसाधनों पर है और न अतिरिक्त अदालतें बनाने का उसे अधिकार है। यही नहीं वह न तो कोर्ट का स्टाफ रख सकता है और न अदालतों के लिए अपेक्षित सुविधाओं में ढांचागत बढ़ोत्तरी कर सकता है। आदर्श स्थिति तो यह है कि इन सभी मामलों में उसे स्वतंत्रता होनी चाहिए। परंतु फिलहाल मैं चाहूँगा कि हम एक कदम आगे ज़रूर बढ़ें और उच्च न्यायालयों को निम्न के अनुसार सीमित स्वायत्तता दी जाए :-

1. उच्च न्यायालय बजट में बुनियादी ज़रूरतों की मांग करती है, अत: सामान्यत: उनकी व्यवस्था कर दी जानी चाहिए जिसे योजनागत व्यय के रूप में लिया जा सकता है।

2. बजट की कुल सीमा के अंतर्गत मुख्य न्यायाधीश/उच्च न्यायालयों को अधिकार होना चाहिए कि वह निधि का विनियोजन और पुनर्विनियोजन कर सकें और

3. उच्च न्यायालयों की खातेदारी की पद्धति अधिक पेशेवर ढंग से होनी चाहिए जिसमें आन्तरिक आडिट की प्रणाली भी सम्मिलित हो।

अपेक्षित प्रशासनिक और वित्तीय समर्थन एवं सहयोग के अतिरिक्त राज्य के दो अन्य अंगों को भी कानूनी सुधार लाने के मामले में न्यायपालिका की सहायता करनी चाहिए। इससे न केवल न्याय देने की प्रणाली सुधरेगी अपितु खर्चा सहनीय हो जाएगा और जनता को पूरा न्याय मिल सकेगा। कानूनी प्रक्रिया में सुधार के कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे अन्तहीन बहस में फंसे रह जाते हैं।

हाल में मीडिया में जो ''प्राथमिक न्याय की असफलता'' का मामला कुछ क्षेत्रों में उठा है, उसने फ़ौजदारी कानून सुधारने के सुझावों को आगे बढ़ाया है, जिसमें गवाहों के बदलते बयानों की बुराई भी शामिल है। कुछ दिनों पहले इसकी व्यापक चर्चा भी हुई थी। धारा 164 सीआरपीसी के अंतर्गत जांच के दौरान मजिस्ट्रेटों के सामने बयान लिये जाने की बात भी उठी थी।

इसका अर्थ है कि न्यायिक मजिस्ट्रेट के कामकाज में भारी अभिवृद्धि, जबकि वे पहले ही काम के बोझ से दबे पड़े हैं। इस प्रकार का अतिरिक्त भार उन्हें तभी दिया जाना चाहिए जबकि अतिरिक्त स्टाफ बढ़ाया जाए।

सभी जानते हैं कि बहुत मामलों में सरकार और सरकारी संस्थानों के लोग पार्टी बन कर अदालत में आते हैं। यदि सरकार की अपनी घर की व्यवस्था में सुधार हो तो बहुत-सी मुकदमेबाजी कम हो सकती है। इससे सरकार का धन बचेगा और अदालत फ़िज़ूल के मुकदमों से बचेगी। सरकार को चाहिए कि वे अपने मामलों की वैकल्पिक व्यवस्था करके समझौते के माध्यम से निपटा ले।

फ़ौजदारी न्याय मिलने का मामला अनेक कारणों से ध्वस्त होने के कगार पर है। इसमें कुछ जिम्मेदारी राज्य की कार्यकारी शाखा को वहन करनी होगी। जांच और मुकदमा दायर करने वाली मशीनरी में सुधार के लिए काफी कुछ नहीं किया गया है। कानून और व्यवस्था की जिम्मेदारी से अलग जांच शाखा रखने का सुझाव विशेष महत्व का है और साक्ष्य नियमों में परिवर्तन करने पर भी ध्यान नहीं दिया जा रहा है। कुछ बड़े व्यक्तियों के मामले में फ़ौजदारी कानूनी पद्धति की असफलता के प्रति जन आक्रोश से हम सबको सबक लेना चाहिए कि पूरी प्रक्रिया को फिर से बदलने के लिए तुरन्त कोई कार्यवाही होनी चाहिए। हमें याद रखना चाहिए कि कानून एक गम्भीर मामला है इसलिए इसमें फुटकर प्रतिक्रियाओं से काम नहीं चलेगा।

[भारत के उच्चतम न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश के भाषण के कुछ अंश-सं॰]

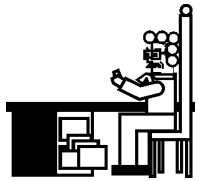

न्यायिक सुधार के उपाय

❑ **जगमोहन**

कुछ समय पूर्व उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों के दो दिवसीय सम्मेलन और मुख्यमंत्रियों तथा मुख्य न्यायाधीशों की एक गोष्ठी ने उन गंभीर चुनौतियों की ओर एक बार फिर ध्यान आकृष्ट कराया है जिनका सामना हमारी न्याय व्यवस्था कर रही है। इनमें से एक विभिन्न अदालतों में लंबित मामलों की भारी संख्या से संबंधित है। वर्तमान में करीब ढाई करोड़ मामले निचली आदलतों में लंबित हैं, जबकि उच्च न्यायालयों में इनकी संख्या 35 लाख है। उच्च न्यायालयों के 18 फीसदी मामले पिछले दस साल से लंबित चल रहे हैं। गोष्ठी में इस बात पर सहमति जताई गई कि कार्य का एक घंटा बढ़ा दिया जाना चाहिए, लेकिन इससे कोई खास फर्क नहीं पड़ेगा। इस बात को भी ध्यान में रखना होगा कि मामले निपटाने की जल्दबाजी में कहीं गुणवत्ता प्रभावित न हो जाए। इस समस्या का समाधान आमूल-चूल सुधार में निहित है- विशेष तौर पर ऐसे सुधार जो भारत की परिस्थितियों के अनुकूल हैं।

महत्वपूर्ण उपायों में से एक है **अखिल भारतीय न्यायिक सेवा** का गठन करना। इस सेवा में भर्ती प्रतियोगिता परीक्षा के आधाार पर की जानी चाहिए। परीक्षा राष्ट्रीय न्यायाधिकरण आयोग के तत्वावधान में होनी चाहिए। सफल उम्मीदवारों को न्यायिक प्रबंधन राष्ट्रीय अकादमी में दो साल का सघन प्रशिक्षण देना चाहिए। अत्यधिक योग्य, प्रशिक्षित और उत्साहित अधिकारियों का सेवा कैडर देश की समग्र न्यायिक व्यवस्था पर सकारात्मक प्रभाव डालेगा। यह जजों के स्तर में सुधार करेगा और तेज़ी से निपटारा कर लंबित मामलों का पहाड़ छोटा करने में मदद करेगा। संविधान के कामकाज की समीक्षा कर रहे राष्ट्रीय आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि लंबित मामलों की संख्या कम करने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि जजों की संख्या तो कम

कर दी जाए, किंतु उनकी कार्यकुशलता बढ़ा दी जाए। नई सेवा से राष्ट्रीय एकता की शक्तियां मजबूत होगी, न्यायपालिका में लचक बढ़ेगी, कैरियर के विकल्प विस्तृत होंगे और राष्ट्रीय स्तर पर ईमानदारी और सक्षमता की उच्च साख विकसित करने की प्रेरणा मिलेगी। इससे अनेक नियामक प्राधिकरणों और ट्रिब्यूनलों के अध्यक्ष, पदाधिकारी और सदस्य चुनने के लिए वरिष्ठ और अनुभवी अधिकारियों की बड़ी खेप उपलब्ध रहेगी। देश में न्यायपालिका की सक्षम कार्यप्रणाली के संबंध में अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का गठन इतना महत्वपूर्ण है कि पहले विधि आयोग ने इसके संविधान की रूपरेखा खींच ली थी। इस आयोग के अध्यक्ष एम सी सीतलवाड थे। उन्होंने कहा था कि हमारा स्पष्ट मत है कि उच्च न्यायपालिका में एक निश्चित् अनुपात में भर्ती अखिल भारतीय प्रतियोगिता परीक्षाओं के आधार पर की जानी चाहिए।

दुर्भाग्यपूर्ण है कि राष्ट्रीय और प्रादेशिक स्तर पर हमारा नेतृत्व संकीर्ण सोच से ऊपर उठने में असमर्थ सिद्ध हुआ है। अपनी इस असमर्थता के कारण वह देश को न्यायिक शासन का नया ढांचा नहीं उपलब्ध करा सका। भारत 1985 में न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर संयुक्त राष्ट्र द्वारा पारित घोषणापत्र का एक पक्षकार है। अगर घोषणापत्र में दर्ज सिद्धांतों का पूरी तरह पालन करना है तो केंद्र को राज्य सरकारों को इस बात के लिए तैयार करना होगा कि वे अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के लिए सहमत हों, जिसका नियमन राष्ट्रीय न्यायिक आयोग करेगा।

न्यायिक व्यवस्था की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए एक नया उपाय है **न्यायिक महालेखा परीक्षक** के रूप में एक नई संस्था का गठन। इसका मुख्य कार्य सुप्रीम कोर्ट को छोड़कर सभी अदालतों के न्यायिक काम की जांच-पड़ताल करना होगा। यह संस्था इस प्रकार स्थापित की जाएगी कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित् रहेगी। साथ ही कार्य की गुणवत्ता में बढ़ोतरी होगी अर्थात् ईमानदारी, तटस्थता, निरपेक्षता और गति से काम होगा। न्यायिक महालेखा परीक्षक की सहायता चार अतिरिक्त महालेखा परीक्षक करें। कार्यविभाजन की दृष्टि से देश को चार क्षेत्रों में बांटा जाए- उत्तर, दक्षिण, पूरब और पश्चिम। चारों अतिरिक्त महालेखा परीक्षक एक-एक ज़ोन की जिम्मेदारी संभाले। परीक्षण कुछ मामलों तक ही सीमित रहना चाहिए। यह कार्य महालेखा परीक्षक द्वारा प्रतिपादित और सुप्रीम कोर्ट द्वारा अनुमोदित नियमों के अनुसार होना चाहिए। इसका मूल उद्देश्य अदालती आदेशों को

चीर-फाड़ करना नहीं, बल्कि जजों पर यह प्रभाव डालना हो कि उनके काम पर भी किसी की नज़र है। वे गैर-ज़िम्मेदार, लापरवाह और अकर्मण्य नहीं हो सकते, क्योंकि उनके द्वारा निष्पादित मामलों के स्तर और परिमाण, दोनों की प्रशिक्षित और अनुभवी स्वतंत्र निकाय द्वारा जांच-पड़ताल की जानी है। इसकी रिपोर्ट उच्चतम न्यायालय के संज्ञान में लाई जानी चाहिए।

न्यायिक महालेखा परीक्षक उच्चतम न्यायालय द्वारा नियुक्त किया जाएगा और अपनी रिपोर्ट केवल उच्चतम न्यायालय को ही सौंपेगा। चयन उच्चतम न्यायालय की कार्यकारी परिषद द्वारा किया जाएगा, जिसकी अध्यक्षता मुख्य न्यायाधीश करेंगे। इसमें उन्हीं लोगों का चुनाव हो पाएगा जो उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य कर चुके हों या फिर कार्यरत हों। इसी प्रकार अतिरिक्त महालेखा परीक्षक और न्यायिक परीक्षकों की भी नियुक्ति की जाएगी। अन्य संगठनात्मक ढांचा उच्चतम न्यायालय के दिशानिर्देशानुसार तैयार किया जा सकता है। उच्चतम न्यायालय के बजट में ही इस नए संस्थान के लिए प्रावधान करना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायिक महालेखा परीक्षक के रूप में इस संस्था की स्थापना से अदालतों के फैसलों की गुणवत्ता और संख्या, दोनों में बढ़ोतरी होगी। जनता में न्याय व्यवस्था के प्रति विश्वास बढ़ेगा।

न्यायिक महालेखा परीक्षक की संस्था तमाम प्रकार के न्यायिक आंकड़ों को संग्रहीत और प्रकाशित करने की स्थिति में होगी। इससे न्यायपालिका में भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने में भी मदद मिलेगी। हाल में एक अध्ययन से यह बात सामने आई है कि हर साल 2630 करोड़ रुपये निचली अदालतों में घूसखोरी में चले जाते हैं। आज देश में भ्रष्टाचार महामारी के समान फैल गया है। यह अपेक्षा करना व्यर्थ है कि न्यायपालिका, खासकर निचली अदालतें इसके प्रभाव से बची रह सकेंगी। इसकी रोकथाम के लिए कई उपाय विचाराधीन है, जिनमें न्यायाधीश जांच अधिनियम के रूप में एक विशेष कानून का निर्माण भी शामिल है, लेकिन भ्रष्टाचार के खिलाफ सामाजिक और नैतिक वातावरण की अनुपस्थिति में ये उपाय शायद ही प्रभावशाली सिद्ध हों। मूल समस्या मानसिकता में सुधार लाने की है। दुर्भाग्य से कोई इस ओर ध्यान नहीं दे रहा है।

[-लेखक पूर्व केन्द्रीय मंत्री हैं।]

कितनी स्वतंत्र है हमारी न्यायपालिका?

❑ डॉ॰ वन्दना मिश्रा

आज न्यायपालिका सरकार का सर्वाधिक सक्रिय अंग है, जबकि हम देखते हैं कि अन्य अंग विधायिका और कार्यकारी पक्षों ने जन-हितों को बड़े शर्मनाक ढंग से तिलांजलि दे दी है। न्यायपालिका ने न्यायिक प्रक्रिया को निर्बाध गति से संचालित करते हुए असंख्य गरीब और कमज़ोर वर्ग तथा समाज के अन्य लोगों के विश्वास और निष्ठा को जीत लिया है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि मानवोचित भूमिका निभाने में न्यायपालिका ने एक लम्बी छलांग मारी है। कई मामलों को उसने अदम्य साहस और आत्म-विश्वास के साथ निपटा कर अद्‌भुत निर्भयता का परिचय दिया है। न्यायपालिका ने अनेक निर्णय निर्भयता और निष्पक्षता के साथ उन क्षेत्रों में दिये जिन्हें न्यायपालिका के लिए बाहरी समझा जाता था। फैसलों से न केवल कानून के शासन की सम्पुष्टि हुई अपितु सामाजिक-आर्थिक न्याय भी मिला, जो हमारे संविधान का प्रमुख उद्देश्य है। परंतु यदि हम ''सम्पूर्ण न्याय'' प्रदान करना चाहते है तो निश्चित् ही हम मंज़िल से अभी कोसों दूर हैं। इसलिए ''किया तो बहुत कुछ पर बाकी लगभग सारा है' यही हमारा निर्देशक वाक्य होना चाहिए। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिये न्यायिक प्रणाली में भी क्रांतिकारी सुधारों की आवश्यकता है, जिससे वह प्रभावकारी ढंग से कार्य कर सके।

हमारे जैसे समाज में जहां बहुत कुछ घट रहा है, जहां जनता अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक हो रही है। विभिन्न समाजों की मांगें भी विभिन्न होती हैं, और उन सबकी पूर्ति होनी संभव नहीं है। इसलिए न्यायपालिका के प्रभावकारी कार्य संचालन में अनेक दबाव आते हैं, कार्यपालिका की खींचातानी भी बनी रहती है और राजनैतिक दबाव भी पड़ते हैं जिसके कारण भारतीय न्यायपालिका की स्वतंत्रता केवल नाम-मात्र की रह गयी है। इसके पीछे जो वास्तविकताएं हैं, हमें उनका भी ध्यान रखना चाहिए।

विगत कुछ दशकों में जो दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति बनी है, वह यह है कि कार्यपालिका और विधायिका मिलकर न्यायपालिका को अनेक प्रकार से निरुत्साहित करने में लगे हैं। प्रधानमंत्री के रूप में जवाहरलाल नेहरू और इंदिरा गांधी ने जजों को सुपरसीड करना प्रारम्भ कर दिया था। उदाहरण के रूप में, जब केशवनंद भारती के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने न केवल 25 वें संविधान संशोधन को असंवैधानिक घोषित कर दिया, बल्कि यह भी कहा कि संसद संविधान की संरचना नहीं बदल सकती जिसके कारण संसद सदस्य नाराज़ हो गए और उस समय सर्वोच्च न्यायालय के अनेक सीनियर जजों को छोड़कर जस्टिस ए. एन. राय को मुख्य न्यायधीश बना दिया गया। वास्तव में न्यायपालिका के नैतिक पतन की दिशा में यह पहला कदम था। इसके पश्चात् न्यायपालिका को निरुत्साहित करने के अनेक उपाय अपनाए गए जैसे कि - उच्च न्यायलयों के जजों का अप्रत्यक्ष रूप से पदोन्नति का अधिकार दूसरों को देना, अतिरिक्त जजों की नियुक्ति नहीं करना, मासिक आधार पर अतिरिक्त जजों का सेवा-काल बढ़ाना, उच्च न्यायालय के जजों की पदावनति करना और उनके तबादले करने, अदालती कार्यवाही के कामकाज में बाधा डालना आदि आदि। सरकार ने यहां तक किया कि सार्वजनिक रूप से न्यायपालिका की भर्त्सना की और जब कभी सरकार को कोई निर्णय पसंद नहीं हुआ उसकी आलोचना की गई। बैंको के राष्ट्रीयकरण के मामले में सरकार ने जनता से अपील की कि उन्हें न्यायपालिका पर दबाव डालना चाहिए। जब प्रधानमंत्री स्वयं सर्वोच्च न्यायालय के कुछ निर्णयों को प्रगति के मार्ग में बाधक होने की संज्ञा दें, और जनता का आह्वान करें कि वे जजों पर दबाव डाले मानों प्रधानमंत्री की राय में जज इतने भावुक हैं कि इस प्रकार से दबाव में आ सकते हैं।

मुख्य न्यायाधीश द्वारा निर्णय-प्रक्रिया को भी प्रभावित कर पाने के कारण भी न्यायपालिका की स्वतंत्रता प्रभावित हुई है। वास्तव में यदि देखें तो उसका महत्व अदालत के किसी अन्य जज से अधिक नहीं है और उसका भी, सबकी तरह बस एक ही मत (वोट) होता है। इसे प्रभावकारी बनाने में निर्णय प्रबंधन की उसकी भूमिका है, क्योंकि वह अदालत का नेतृत्व करता हैं, वह कोर्ट बैंचों में अध्यक्ष (मॉडरेटर) का कार्य करता है, जहां कि मामलों पर विचार-विमर्श होता है और फैसले लिखे जाते हैं। इन बैंचों में प्राय: सबसे पहले उसे अवसर दिया जाता है कि वह अपने फैसले बताए यद्यपि वह वोट

सबसे बाद में देता है। जब मुख्य न्यायाधीश किसी मामले पर बहस शुरू करता है और अपने विचार रखता है तो उसे उस मामले पर अपना दृष्टिकोण रखने का विशेष अवसर दिया जाता है।

सरकार चाहे किसी प्रकार की क्यों न हो, उसके द्वारा लिए गए निर्णयों से अनेक लोगों के जीवन पर असर पड़ता है, और यह प्रभाव समाज के विभिन्न वर्गों पर भिन्न-भिन्न रूपों में पड़ता है। ऐसे में समाज में परस्पर विरोधी स्वरों का उठना स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति में जिन लोगों पर निर्णय का प्रभाव पड़ता है, उनमें से कुछ लोग या उनका समुदाय, फैसला अपने पक्ष में करवाने के लिए दबाव डालते हैं। अत: अदालतें भी इन समुदायों के दबाव में अछूती नहीं रह सकती। अदालतें भी समाज का ही एक अंग है, उन्हीं में से बनती हैं और इसकी राजनीति से प्रभावित रहती है। जब वे फैसला सुनाती हैं, तो केवल संबंधित पक्षों को ही संतुष्ट नहीं करती अपितु अप्रत्यक्ष रूप से विशेष समुदायों को भी संतोष प्रदान करती हैं।इसलिए संबंधित समुदायों के लक्ष्य की दृष्टि से उनके लिए इनका (कोर्ट के फैसलों का) विशेष महत्व है। इसलिए संगठित हितों वाले समुदाय प्राय: अदालतों के फैसलों पर प्रभाव डालते हैं और जजों की नियुक्ति की प्रक्रिया में भूमिका निभाते हैं। चाहे हम कितनी ही कठिन मेहनत क्यों न कर लें, जजों की निष्पक्षता बनाए रखने के हर सम्भव प्रयत्न के बावजूद भी संगठित हितों की राजनीति न्यायिक पद्धति पर प्रभाव डालती ही है।

आदर्शों के अनुरूप जजों को राजनीति से ऊपर उठकर काम करना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि 1. उनका चयन राजनीति से ऊपर उठकर ''सर्वश्रेष्ठ उपलब्ध व्यक्तियों'' में से किया जाना चाहिए 2. विशिष्ट मामलों में उनके निर्णयों पर राजनीति का प्रभाव, व्यक्तिगत आदर्श अथवा पार्टी के आदर्श अथवा एक हितों वाले ग्रुपों का प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए और 3. यदि वे अलोकप्रिय फैसले दें, अथवा विवादास्पद न्यायिक फ़िलासफ़ी के अनुरूप आदेश जारी करें तो उनके विरुद्ध बदले की भावना की राजनीति नहीं की जानी चाहिए। वे इससे अछूते रखे जाएं। परंतु, सब कुछ कहने, सुनने के बावजूद जज के कामकाज की प्रकृति ही ऐसी होती है कि उसे परस्पर विरोधी दृष्टिकोण और जीवन-मूल्यों के बीच चुनाव करना पड़ता है और ऐसा करते समय वे जाने-अनजाने में राजनीति के केंद्र और नीति निर्णायकों के केंद्र बन जाते हैं। वे चाहे शुद्ध राजनीतिक प्रश्नों के उत्तर देने से इंकार कर दें, परंतु

जहां सामाजिक-आर्थिक न्याय का संबंध आता है, वे नीति-निर्णय करने वालों की प्रथम श्रेणी में आते हैं। और जब वे लोग निर्णय लेते हैं, तो चाहे वे कितने ही निष्पक्ष और तटस्थ क्यो न हों, उनके फैसलों का समाज पर कहीं-न-कहीं असर पड़ता ही है। जैसे कि वी.एन. गाडगिल ने कहा, जजों से यह अपेक्षा करनी कि वे अपने फैसले ''स्वयं के राजनैतिक सरोकारों से ऊपर उठकर दें, अस्वाभाविक, अवास्तविक, अतार्किक है। जजों के जो भी राजनैतिक सरोकार हैं, उसका प्रभाव उनके निर्णयों पर पड़ता ही है।''

अन्त में सामाजिक परिदृश्य में जब उफान की स्थिति आती है, तो उपरोक्त बाधाएँ कुछ अधिक बढ़ जाती हैं। हमारा समाज, यद्यपि विकसित हुआ है, तथापि उसने अनेक विध्वंस देखे हैं, साम्प्रदायिक, प्रादेशिक, भाषाई, दंगे-फसाद और समुदायों के झगड़े, विद्यार्थियों का असंतोष, परिवहन हड़तालें, बिजली ब्लैक-आऊट, बाढ़-अकाल आदि सहे हैं। इन सबका प्रभाव किसी-न-किसी रूप में हमारे समाज के प्रत्येक वर्ग के महत्वपूर्ण हितों- आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक - पर पड़ता हैं। इस प्रकार निर्णय लेने वाले संस्थान विधायिका, कार्यकारी अथवा न्यायपालिका क्योंकि संविधान की व्याख्या का काम करती हैं, इसलिए उनका क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो जाता है। भारत की जनता, अपेक्षा करती है कि न्यायपालिका आने वाले दिनों में सम्पूर्ण समाज को बेहतर सेवा प्रदान कर सकेगी।

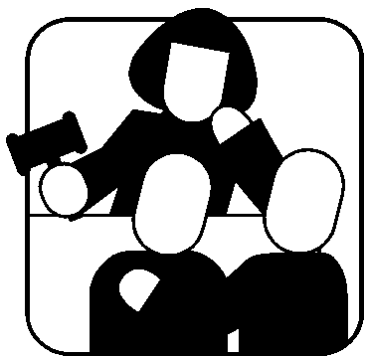

इस्लाम एक कानून अनेक

❑ मुज़फ्फ़र हुसैन

किसी भी देश का मुसलमान हो वह यह चाहता है कि इस्लाम के पर्सनल लॉ के अनुसार उस का जीवन व्यतीत हो। लेकिन यह कठिन ही नहीं अव्यावहारिक है। दुनिया के हर देश में मुसलमानों का बहुमत नहीं है इसलिए जहां अन्य धर्मावलंबी बसते हैं वहां इस्लामी कानून लागू नहीं हो सकते। आधुनिक दुनिया में धर्म आधारित कानून को अब स्थान नहीं दिया जाता। इसलिए वर्तमान काल और परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए राष्ट्रीय कानून बने हुए हैं जिन्हें दीवानी और फौजदारी की संज्ञा दी गई हैं। दीवानी कानून मनुष्य के जीवन की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं जबकि फौजदारी उन कानूनों को भंग करने वाले तथा समाज में शांति स्थापित करने के लिए नियम और सिद्धांत बनाते हैं। इस प्रक्रिया से दण्ड विधान जुड़ा हुआ है जिसके तहत कानून भंग करने वाले को सरकार दंडित करती है।

कानून का जनक धर्म ही है इसलिए वह अपने अनुयाइयों के जीवन के हर पहलू को प्रभावित करने का काम करता है। कानून के माध्यम से अलगाव पैदा न हो इसलिए पश्चिमी राष्ट्र अपने अधिकतर कानून, जिन्हें उनके संविधान और सरकार ने बनाया है, उन्हें ही लागू करते हैं। इसलिए विवाह, तलाक और भरण पोषण जैसे मुद्दों पर वे अपने बनाए हुए कानून के तहत ही समाज की व्यवस्था को संचालित करते हैं। लोकतंत्र होने के बावजूद वे धर्म आधारित अलगाव को स्थान नहीं देते। अल्पसंख्यक जो विभिन्न धर्मों का पालन करने वाले होते हैं उनके सीमित अधिकारों को सरकार मान्यता देती है लेकिन ऐसा कुछ नहीं करती जिससे बहुसंख्यक समाज को नुकसान पहुंचे। दुनिया में हिन्दुस्तान ही केवल एक ऐसा देश है जिसने अल्पसंख्यक समाज के धर्म आधारित कानून को मान्यता दी है लेकिन इस मुद्दे को भी संविधान में स्थान दिया गया है जिसके तहत देश की जनता को वचन दिया गया है कि देश में समान नागरिक संहिता को लागू किया जाएगा। इसलिए जब टकराव की स्थिति आती है और अल्पसंख्यक समाज के कानूनों के कारण उसी समाज के लोगों में दुविधा पैदा होने लगती है तब कानूनों की संरक्षक एवं व्याख्या करने वाली सबसे बड़ी संस्था सुप्रीम कोर्ट सरकार से आग्रह करती है कि उक्त स्थिति में निपटने के लिए देश में समान नागरिक कानून लागू किया जाए।

इस्लामी जगत में शरीयत के कानून क्या सभी देशों में एक जैसे हैं? यदि उनके लागू करने में समरसता और एकजुटता नहीं है तो फिर वे किसी देश की सरकार को भला किस प्रकार बाध्य कर सकते हैं कि उनके धर्म के नाम पर वे जो कह रहे हैं उसे ही कार्यान्वित किया जाए। मुसलमानों में अनेक पंथ और अनेक संप्रदाय हैं जिनके मौलाना समय-समय पर अपने ढंग से इस्लामी कानूनों की व्याख्या करते रहते हैं। परिस्थिति अनुसार जब इस्लामी देशों में ही पंथ और संप्रदाय के आधार पर कानूनों की व्याख्या अलग-अलग की गई है तब तो अल्पसंख्यक होने के बावजूद उस देश की सरकार को उक्त पंथ में भी एकता स्थापित करने का प्रयास करना ही पड़ेगा। यदि वे स्वयं किसी निर्णय पर नहीं पहुंचते हैं तो उनकी एकता के लिए भी राष्ट्रीय कानून ही अधिक हितकर होंगे। पिछले दिनों पेरिस में इस्लामी शरीयत के कानूनों को क्रियान्वित करने के जो अलग-अलग ढंग और रूप हैं उन पर इस्लामी विद्वानों में खुल कर बहस हुई।

इस बात पर भी चर्चा हुई कि अनेक ऐसे कानून हैं जिन्हें इस्लाम मान्यता देता है लेकिन आधुनिक दुनिया नहीं। गुलामी प्रथा इस्लामी कानून में वैध है। सऊदी अरब में 1960 तक यह लागू थी। लेकिन अब सऊदी सहित विश्व के किसी भी देश में नहीं है। इस्लामी हो या गैर इस्लामी किसी भी देश में गुलाम और लोंडियों की खरीदी-बिक्री नहीं होती तो इस्लाम के फौजदारी कानून में इस का कोई महत्व नहीं है। ब्रिटेन के आर्क बिशप रुमान विल्यिम्स ने सुझाव देते हुए कहा है कि अनेक शरीयत संबंधी कानूनों के लिए ब्रिटिश कानून में स्थान निकाला जा सकता है। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि ब्रिटेन के वर्तमान कानूनी ढाँचे में इस्लामी कानूनों को संशोधित कर के स्थान दिया जा सकता है। मुसलमानों का बचाव करते हुए वे कहते है कि अनेक कानूनों को जब इस्लामी देशों ने रद्द कर दिया है तो फिर ब्रिटेन के मुसलमानों को भी उन्हें हटाने और संशोधित करने पर विचार करना चाहिए।

इस्लामी शरीयत कौन्सिल के सचिव शेख सहीब हसन का कहना है कि दुनिया के 57 मुस्लिम देशों में केवल दो या तीन देशों में इस्लामी फौजदारी कानून पूर्ण रूप से लागू है तो फिर हम इसे यहां क्यों लागू करना चाहेंगे। शरीयत की व्याख्या में न केवल सुन्नी और शिया बल्कि सुन्नियों के चार इमामों के और आधुनिक चिंतकों के बीच भी विरोधाभास पाया जाता है। वाशिंगटन के जॉर्जटाउन विश्वविद्यालय के इस्लामी इतिहास के प्राध्यापक जोन दुल का मत था कि आज की मुस्लिम दुनिया में शरीयत से तात्पर्य विभिन्न क्षेत्रों में सत्ता स्थापित करने से है, कठोर दंड दिए जाने की व्यवस्था से नहीं। अधिकतर मुस्लिम देशों में शरीयत निकाह, तलाक, विरासत और बच्चों की देखभाल जैसे निजी मामलों तक मर्यादित हो गई हैं। सबसे अधिक बहस महिलाओं के अधिकारों पर होती है जिन्हें शरीयत के नाम पर अत्यंत संकीर्ण दायरे में मर्यादित कर दिया गया है। महिलाओं को यदि समान अधिकार नहीं दिया जाता है तो आधुनिक दुनिया में आधी जनसंख्या के साथ अन्याय होगा। क्या कोई आधुनिक समाज का देश यह पसंद करेगा? इस्लामी राष्ट्र ईजिप्ट यह मानता है कि शरीयत उसके यहां कानून बनाने का प्रमुख स्रोत है, लेकिन वहां के फौजदारी और दीवानी कानून 19वीं शताब्दी के फ्रेंच कानून पर आधारित है। हुदूद के कानून पर कुरान के अनुसार कोड़े मारने और मौत की सज़ा है लेकिन आज के आधुनिक ईजिप्ट में इसका उपयोग नहीं किया जाता। शरीयत के कानून के अनुसार कोई मुसलमान अपना धर्म नहीं बदल सकता और कोई गैर मुसलमान मुस्लिम हो जाने के पश्चात् पुनः अपने धर्म में नहीं लौट सकता। लेकिन अभी कुछ दिनों पूर्व ईजिप्ट की अदालत में ऐसे 12 मुसलमानों को इस्लाम छोड़ने की आज्ञा प्रदान कर दी गई जिन्होंने ईसाईयत को छोड़ कर इस्लाम स्वीकार कर लिया था। ईश निंदा के विरुद्ध वहां आज तक किसी को मृत्यु दंड नहीं दिया गया। लेबनान के मुसलमानों, मसीहों और दुरुजों के 19 स्वीकृत संप्रदाय अस्तित्व में हैं। इन सभी की पर्सनल लॉ की अपनी अदालतों के अतिरिक्त दीवानी अदालतें भी मौजूद हैं। इंडोनेशिया दुनिया का सबसे बड़ा मुस्लिम देश हैं। इस्लाम की दृष्टि से वह सहिष्णु भी है। उसके एक प्रांत आचे में बलात्कारी, जुआखोरी और चोरी करने वालों को कोड़े लगाए जाते हैं, लेकिन इंडोनेशिया के अन्य प्रांतों में ऐसा कठोर कानून नहीं है। यानी देश एक है, वहां धर्म भी एक है लेकिन कानून अलग-अलग हैं। अफ़्रीका के नाईजेरिया नामक देश के दक्षिणी राज्यों में सन् 2000 में अत्यंत कड़े इस्लामी कानून लागू किए गए लेकिन दंड किसी को भी नहीं दिया गया। इस प्रकार अपने शरई कानूनों की धज्जियां स्वयं वहां की सरकार ने उड़ाई। उनका कहना था कि कहने और सुनने में ये सज़ाएँ अच्छी लगती हैं लेकिन व्यावहारिक नहीं हैं। वहां अमीना नामक एक महिला को अवैध संबंधों के कारण पत्थरों से मार देने की सज़ा सुनाई गई थी लेकिन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इसका इतना विरोध हुआ कि सरकार को उक्त दंड स्थगित कर देना पड़ा। नाईजेरिया की राजधानी में एक वेश्यालय से 12 महिलाओं को पकड़ कर इस्लामी कानून के तहत सज़ा सुनाई गई लेकिन उसे आज तक कार्यान्वित नहीं किया जा सका। इस प्रकार का प्रचार वाहवाही तो दिला सकता है लेकिन अपराध को मिटाने के लिए कुछ नहीं कर सकता। इससे इस्लामी कानून ही नहीं बल्कि यहां की सरकार की भी खिल्ली उड़ाई जाती है। डॉक्टर विलयम्स का कहना है कि ब्रिटेन में तो पहले से ही शरीयत के कानून उसकी कानूनी व्यवस्था का हिस्सा हैं। ब्याज के बिना किसी वस्तु को रेहन रखना और ठेके पर काम कराने की वहां कानूनी आज्ञा प्रदान की गई है। लेकिन जहां तक ब्याज का मामला है शरीयत के कानून को नहीं के बराबर माना जाता है। आज तो बैंक व्यवस्था के बिना व्यापार और लेनदेन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। बिना ब्याज के बैंक चलाना एक हास्यास्पद बात है। यह कुदरत का नियम है कि जिस वस्तु का उपयोग नहीं होता वह शनैः शनैः समाप्त हो जाती है। इस्लामी शरीयत कानून का भी यही किस्सा है। उनका उपयोग अत्यंत कम होता है इसलिए आधुनिक दुनिया में उनकी समाप्ति निर्विवाद है। तलाक के पश्चात् महिला को भरण पोषण कितना और कैसे मिले यह हर मुस्लिम देश की अपनी व्यवस्था है। इसलिए पर्सनल लॉ का कोई एक स्वरूप कहीं नहीं है।

-सी-1/18, पार्क साईड कालोनी,
विकरोली (पश्चिमी) मुम्बई

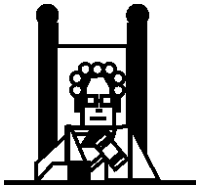

ACCOUNTABILITY OF JUDGES

❑ **Prashant Bhushan**

Power sans accountability inevitably breeds corruption and abuse. Consider the situation. Once appointed, a Judge of a High Court (the highest judicial mechanism in the states) or the Supreme Court, cannot be touched except by a complicated procedure of impeachment. As per the constitutional provisions, a Judge of a High Court or the Supreme Court can only be removed by impeachment after 100 members of the Lok Sabha (the lower house) or 50 members of the Rajya Sabha (the upper house) move the speaker, who may refer the charges to a committee of Judges whose verdict is put up before both the houses of Parliament. The judge can only be removed if a two third-majority of members present and voting approve the verdict of the committee.

Today impeachment remains the only option since the judicial system has insulated itself from criminal investigation through a Supreme Court ruling. This happened in 1991 in a case arising from the discovery of huge quantities of money from the residence of Justice K Veeraswamy, the then Chief Justice of Madras High Court. When the Central Bureau of Investigation prosecuted him for corruption, the Supreme Court ruled that no First Information Report can be registered against a judge, nor a criminal investigation be initiated, without prior consent of the Chief Justice of the Supreme Court. This effectively excluded the higher judiciary from the ordinary laws of the land, since there is no possible circumstance under which an investigating agency can approach the Chief Justice for consent to investigate a judge without any concrete evidence against him. This is the reason why no judge has ever been subjected to a criminal investigation after the Veeraswamy judgment. In the meanwhile, armed with this legal immunity judicial corruption has continued to flourish.

This immunity is doubly reinforced by the fact that the procedure for impeachment of judges is not only cumbersome, it is also eminently susceptible to political interference. The existing system of impeachment was found to be practically unworkable in the V Ramaswamy case, where the judge survived in office despite being found guilty on several serious charges of corruption by a statutory committee of three fellow judges. This was because members of the Congress, then in power during the Prime Ministership of PV Narasimha Rao, abstained from voting due to a whip issued by the party leadership when the impeachment motion was put to vote in Parliament in May 1993. In that particular case, however, it was at least possible to initiate the process, because the charges against the judge dealt with irregularities in purchases made in his official capacity. These purchases were audited by the Accountant General and it was in that process that the evidence of corruption came out. As a result, it was possible to frame charges for his impeachment and have the relevant procedural motions signed by 100 members of Parliament. In normal cases of judicial corruption however, it is difficult to produce evidence of the judge's corruption in the absence of official investigation. Thus, it is not possible to even initiate the process of impeachment let alone carry one through to the bitter end.

Contempt of Court

Apart from enjoying immunity from removal and investigation, the higher judiciary further enjoys virtually

unlimited powers of punishing people for contempt of court. Any person making any allegation of corruption against a sitting judge can be charged and punished for contempt, even if he is in a position to substantiate the charge. The contempt proceedings are so biased in favour of the judicial system that the very judge against whom the allegation of corruption has been made can prosecute the charge for contempt. The judge can even sit in judgment on his or her own case, and can actually refuse to permit the alleged contemnor to lead evidence to prove the charge. This is such a vast and unchecked power that it can easily be and has been misused by the judiciary.

The excessive power that the judiciary wields in respect of contempt is in reality a way of shielding itself from legitimate criticism, even when such criticisim does not otherwise prejudice or obstruct the administration of justice. The existence of this arbitrary power is undoubtedly one of the main reasons why public exposure of judicial corruption has been few and far between and even routine criticism of the judiciary is muted.

Beyond the matter of public scrutiny, the Indian judiciary has been steadily increasing its other powers over the years, adding vast and arbitrary authority ostensibly for enforcing the fundamental rights of citizens. However, these powers are usually exercised in the interests of the ruling establishment. More and more instances are being witnessed where, by judicial fiat, the constitutional mandate is flouted and even the fundamental rights of liberty, equality and right to work are rendered nugatory when ordinary citizens are pitted against the state and powerful sections of society. This is how, for instance, in the interest of cleaning up Delhi's air by reducing the levels of pollution, the Supreme Court ordered the closure and relocation of several small industries in the city, leading to the loss of livelihood of several thousand workers.

As it is, the state has a long record of enacting anti-democratic and draconian laws. Not only have the courts usually put their seal of approval on these laws, but they have sanctified action taken under them, such as the dismissal of employees enmasse from industrial jobs. The judiciary has also recently been playing a leading role in upholding the sellout of public enterprises by disinvestments carried out under the cover of globalisation. Lately, it has played a retrograde role in curbing the rights of workers to protest and go on strike, endorsing several anti-democratic measures to restrict their rights. Meanwhile, the proliferation of public interest litigations has encouraged unrestrained judicial activism. Though judicial activism through public interest litigations can be a healthy check on an executive.

The problems with the higher judiciary, however, begin with the process of appointment itself. Quite apart from the fact that the method of selection of judges itself is defective, the entire process is kept under a cloak of secrecy. Thus, before an appointment is actually made, the general public does not have any idea about who are the candidates being considered for the post. Many persons whose integrity was known to be suspect and those who had been found guilty of professional misconduct during their legal career have come to be appointed to high office through this secretive system. The selection process has undergone some change over the years, but it has not reduced the spate of undesirable and positively harmful appointments. While earlier the selection was made by the government itself (after consultations with the Chief Justice), now, by a process of judicial interpretation, the power has been transferred to a collegium of three to five judges of the Supreme Court. This has managed to reduce the government's monopoly over appointments, but the system has not changed, significantly. The patronage system has simply become more fraternal, since senior judges of the Supreme Court now wield the

power of appointment of their junior colleagues. The proof is in the results, and there has not been a noticeable difference in the quality of appointments.

National Commission

In an attempt to tackle the problem relating to appointments and accountability of judges, the Committee on Judicial Accountability (COJA), consisting of members of the legal profession, almost a decade ago forwarded a detailed proposal for a high-powered, fulltime and independent National Judicial Commission (NJC). This commission would make appointments as also have disciplinary powers over judges of the higher judiciary. The commission would also be responsible for appointments to various commissions and quasi-judicial bodies. The NJC would comprise a nominee each of the Supreme Court, the Chief Justices of the High Courts, the central cabinet, the opposition in Parliament, and the bar. It would also have an investigative machinery of its own to inquire into complaints against members of the judiciary. Members of the NJC would have the same status as that of Supreme Court judges and a guaranteed tenure of five years, after which they would be ineligible for any other similar post.

This proposal would have brought transparency into the system of appointment of judges. But even though nearly every political party included the proposal in its election manifesto, the National Judicial Commission is yet to become a reality. The reasons are not far to seek. But now, after the spate of highly publicised judicial scandals, particularly the Shamit Mukherjee case, the government has come up with a proposal to constitute a somewhat truncated NJC. This commission is to be a part-time body of three senior sitting judges of the Supreme Court, the law minister and a nominee of the Prime Minister. This NJC will not have the power of removal of judges and the present impracticable system of impeachment will continue.

Since under the circumstances the judiciary cannot be expected to reform itself, and since the main political parties have reneged on their electoral commitment as expressed in their manifestos, only a strong public campaign can provide the impetus to put in place an independent and responsible body for the appointment and removal of judges. Popular pressure is the only force that can get the 1991 Veerasamy judgment overruled, whether legislatively or judicially, to ensure that judges can be investigated like any other class of citizens. Civic mobilisation is necessary to force change in the contempt law so as to ensure that citizens cannot be prosecuted for making allegations against judges, unless they have done so recklessly or in bad faith. The law must be changed so that judges cannot sit in judgement of their own contempt cases. If the judicial mechanism has to be rescued from its own infirmities, citizens and civil society in India must put together a strong movement to force accountability in the judiciary.

- The writer is a Supreme Court Advocate.

Banta was charged with stealing a car and after a long trial, the Judge acquitted him. Later that day Banta came back to the Judge who had presided at the hearing.

"Your honour," he said, "I want to get out a warrant for that dirty lawyer of mine."

"Why?" asked the Judge. "He won your acquittal. What do you want to have him arrested for?"

"Well, your honour," replied Banta "I didn't have the money to pay his fee, so he went and took the car I stole."

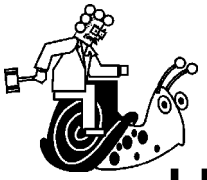

LEGAL NIGHTMARE

❑ **K.M. Sharma**

Like the Indian political system, the Indian legal system is also in a deep mess and needs immediate overhauling and updating on more realistic lines. Legal reforms in fact are long overdue.

How paradoxical it appears that in such a horrifying situation the feudal practice of closing the courts for summer and winter vacations on the pattern of school vacations,still continues uninterrupted.

Something for the bench

'The probity in the conduct of the judges is an essential prerequisite for an unbiased, fair and transparent judicial system'. In an article, "Majesty of the judiciary" former justice of the Supreme Court Shri Krishna Ayer has anguished over the corruption and decline now creeping into the vitals of the higher courts and the need to arrest this trend,

In fact, judges should be trendsetters for society. To rectify this decline in the judiciary, the Judges (Enquiry) Bill 2006 was introduced in the Lok Sabha in 2006 and is now referred to a select committee of Parliament. This Bill provides for National Judicial Council consisting of 4 sitting judges — 2 from the High Courts and 2 from the Supreme Court — chaired by the Chief Justice of India.

Its Section 29 prescribes minor measures like stoppage of assigning judicial work in certain cases to judges who misbehave. This is not being statutarily provided. This bill also requires that judges should declare their assets and liabilities publicly.

In fact, this bill has been prepared on the pattern of the US Judicial and Disability Act of 1980 wherein "The National Judicial Conference has been made responsible for dealing with errant federal judges." A judge is the figure who conducts the trial, keeping in control both the parties, the plaintiff and the respondent.

It is the bounden duty of the Judge to see that the trial proceedings are finished as early as possible and no unnecessary request for adjournment is entertained. The frivolous issues should not be allowed to crop up. In one of the cases, the Judge allowed the application 4/5/51 of the respondent and the final argument could not be completed for one and a half years. It is always the strategy of the respondent to prolong the trial as much as possible.

Another strategy with the respondent is not to accept the summons of the court or his correct or changed address may not be available. In such a situation, the plaintiff becomes helpless and always looks to the judge for appropriate and prompt orders. But the Judge actually gives several dates for service of the summons. A lot of time is wasted in this uncertain situation and the trial hangs on for several years.

Here the stiff attitude adopted by the Judge helps to compel the respondent to respect and adhere to the court's orders, otherwise face separate proceedings.

A bench of Justice S.B. Sinha and Justice Dalveer Bhandari of the Supreme Court in a criminal appeal filed by Motilal Saraf, Manager, State Bank of India, gave direction that constitutional right to speedy trial must be enforced because "speedy trial is one of the facets of the fundamental right to life and liberty enshrined in Article 21 of the Constitution and the law must endure reasonable, just and fair procedure which has a creative connotation."

Life in the present atmosphere has become so complex

that an individual or body of individuals cannot cope with the legal problems involving their lives unless assisted by a lawyer. When the problem arises then people rush to an advocate for legal help. He is well qualified in law and is authorised by the court to represent a case. So he dons a black coat with a white pant and also a bow which comprise his official insignia and is recognised as such. He is supposed to be well aware of the court procedures and the law of the land.

But nowadays fees charged by the advocates has crossed reasonable limits. A client, besides the fee, has to bear expenses in the conduct of the trial which must be paid to the lawyer. These expenses pertain to expenses for sending notices, diet money, taking certified copies of the statements and the order passed, typing, photostat etc etc. These expenses are over and above the under-the-table payments to bailiff, process servers and others. These high fees and other incidental expenses become so high that a man of moderate means cannot afford to hire an advocate what to say a good advocate.

For the Lawyers

In foreign countries there is a normal practice of keeping a family attorney, like a family doctor, on a monthly payment or yearly contract and this attorney takes care of all the legal procedures and problems of the family. But in India this sort of practice has not yet been accepted as a matter of course. But I am of the view that advocates must have a humanitarian approach and should not equate all their clients with the rigid standard of fee charging. They should discriminate against the clients living in fashionable posh palaces. There is no hard and fast rule for charging the fees. It varies as per the reputation, whims and the trend of the legal profession.

There is no doubt that to prepare and present the case

a lawyer has to apply his legal knowledge to the facts of the case and mould it in such a shape where victory, becomes a certainty. The margin of manipulation is always there and it is such a vital factor that a criminal lawyer saves his client booked under Section 302 of IPC for murder from the gallows and he gets a lesser punishment.

As a patient divulges every detail of his ailment to the doctor for a proper cure, similarly a client has to come open to the lawyer and should not conceal any material information from the lawyer to enable him to prepare a foolproof case. It is also seen that a lawyer never pleads his own case. He will definitely engage another lawyer.

It is always advisable to engage a lawyer of some legal firm where many lawyers pool their legal knowledge and apply their minds collectively which will give a solid foundation to the case. Another advantage will be that on the date of the case some lawyer out of the pool will definitely attend the case.

Clients usually complain that lawyers generally do not attend the cases regularly or in the absence of the client send the Munshi to take the date on the plea *"Vakil sahib high court* gaye hain" or *"Vakil sahib bemar* hain" no matter that the lawyer may be attending another case in the next room. Such lawyers who do not take false cases are a rarity in modern times.

A lawyer's profession is really very noble, interesting, invigorating and informative wherein a lawyer studies the human mind, the real causes of social tensions and deteriorating inter-personal relations. A lawyer can become a first rate writer who bases his script on his personal experiences which appear more appealing. Soli Sorabji constantly writes his column in the Indian Express, 'Soli loquies' which is very popular. Abhishek Manu Singhavi writes for Hindustan Times.

INTEGRITY OF JUDGES, LAWYERS VITAL

❑ **Dhananjay Mahapatra**

Law, rights flowing from it, litigants, lawyers and judges complete the chain that pulls the wheels of justice. The litigants' ride on the path to justice depends on the driveway laid by the law and the ability and expertise of lawyers and judges to drive the vehicle of justice (courts).

Purity of justice depends on the lawyers — and the ways and means adopted by them to assist the courts in reaching a just conclusion — and the judges, who need to hear the faintest cry for justice and detect truth from a truck-load of trash.

Honesty and integrity of both lawyers and judges are vital to the health of the justice delivery system. That is why the legal practice has traditionally been regarded as a "noble profession" and judges considered the embodiment of justice and referred to as "My Lords".

The recent spate of demands for transparency and accountability in judiciary had centred around making judges of the Supreme Court and high courts, including the Chief Justice of India, answerable to queries under the Right to Information Act. It is justified keeping in view the faith public reposes in the judiciary.

A huge majority of judges are upright and possess impeccable integrity. But public faith in judiciary gets dented when misdeeds of even one black sheep among them get reported and talked about.

Who creates these black sheep in the judiciary? Who provides them the fodder? Can a judge be corrupted without the aid of lawyers involved in a case that set off such alarms?

An interesting narration came from a pained judge. "If a senior advocate seeks an audience with a judge at his residence, it is generally consented to as senior advocates are not only the conscience keepers of the bar, but also help the bench rectify its mistakes by pointing them out," the judge said.

"If such a lawyer comes for the meeting, leaves two of his clients in the car outside the judge's residence and carries on with the meeting prior to a scheduled hearing before the judge, what message will he be driving home to the waiting litigants," he added. Well, no prizes for guessing the message for the clients.

Fortunately for the system, this category of senior advocates and lawyers form but a minuscule part of the largest bar that India boasts of. But the litigants, who get the 'message' through this innovative way, spread it far and wide giving credence to a lurking suspicion about the purity of justice among those who lose out in the courts.

More than 45 years ago, on December 15, 1962, the Rio de Janeiro Congress of the International Commission of Jurists, attended by 300 Jurists from 75 countries, had in all seriousness discussed the role of lawyers in a changing world. The world of legal practice has undergone a sea of change since then but the resolution passed in 1962 still holds good. It had saddled upon lawyers the duty to promote knowledge of the rule of law and asked the advocate associations to monitor lawyers' standards of ethics.

Both these aspects have received lukewarm response from lawyers' bodies in India, though similar views were endorsed in the 'Declaration of Delhi' adopted by the Commission in December, 1959.

Little has been done by lawyers' bodies, even the statutory regulatory body — Bar Council of India (BCI) — to help a helpless section of judges and litigants harbouring the feeling of being cheated by the advocates.

The lawyers' bodies have a definite role to play in dispensing unadulterated justice. The majority definitely have a role in shutting out the minuscule mavericks who are a blot on the noble profession and carry the spoils to the judges to pollute the stream of justice.

Courtsey : Times of India

****

The Judge asked the defendant, "Hari Singh, do you understand that you have sworn to tell the truth, the whole truth and nothing but the truth?"

"I do."

"Now what do you say to defend yourself?"

"Your Honor, under those limitations...nothing."

****

The Judge said to his dentist: "Pull my tooth, the whole tooth and nothing but the tooth."

SOME FACTS

- Consider the latest available figure cited by CJI himself: Out of the sanctioned strength of 792 judges in the 21 High Courts across the country, the working strength is 586. This works out to 26% vacancies against sanctioned strength. Out of the sanctioned strength of 15,399 subordinate Judges in the country, the working strength is 12,368 - with vacancies accounting for 20% in the subordinate judiciary.
- On the same day, 2.5 crore cases are pending in lower courts.

Modernizing The Legal and Judicial Institutions in India

❑ **Jay Chauhan**

Introduction

India is moving fast forward to the 21st century particularly in the economic development and is integrating in the global economy. To integrate further and become more fully accepted as a developed country, India must match the legal and judicial institutions and bring them up to the world standards.

Common Law System

India should be congratulated for adopting the common law system which was introduced by the British and continued in India after Independence. India has accepted the principles of democracy and rule of law and the trial system since 1946 and is evolving these institutions in the cultural context of India. The common law system works along with the personal law which was present in India prior to the arrival of the English and continues as the Hindu law and Muslim law which applies to the individuals based on their religious background.

Improvements

No legal system in any jurisdiction is perfect and each needs improvement on an ongoing basis. There are a number of improvements which can be identified which would substantially help to improve the quality of justice in India, the most important one being the speeding up of the judicial decision making process. Currently, the

adjournments and delays are excessive and the documents of the courts carry up to 300 matters per day for the judge making it impossible for a judge to render decision on each one. Delays result in not permitting a timely resolution of the problem from the plaintiffs' perspective and in the business environment results in delaying development and at the personal level reduces the ability of the individual to seek his remedy and his rights. It also encourages self help remedies of the citizen as in Landlord and Tenant cases.

Lawyers, Inter Jurisdictional Mobility

India is a country with about 28 states and about the same number of languages but with one Supreme Court which hears cases in English, it works as one jurisdiction. This is a remarkable achievement when you compare it with the European Union which is working with similar language and geographic problems.

Each state in India has its own language and legal capital. The lawyers called to the bar in one state is permitted to practice in other states. This mobility is very helpful in creating a common system and standards. In each local jurisdiction one can use the local language or English. Hindi is commonly used in the northern states.

This full mobility of lawyers is still currently not possible in Canada or in Europe. In Canada there are two main languages, English and French and the province of Quebec uses French and the rest of Canada uses English. Even in the English speaking provinces there is not full mobility yet. Measures are being taken to minimize the impediments to mobility.

Cohesive Legal Profession

The lawyers in India have a very strong bond of the profession. Bar Associations are strong bodies and members protect each other and support each other. Providing free counselling or mentoring to new lawyers is

seen as a duty by the senior lawyers. There is less emphasis on fees when lawyers refer files to each other. Such cohesion enables the profession to develop and move forward together. On the other hand when the profession over protects its members it diminishes the ability of the profession to weed out or discipline the wrongdoers.

Negotiating with Opposite Party's Lawyer

Presently, in India it is difficult for a lawyer doing a case to be seen by his client with the opposing counsel outside the court room because the client would perceive it to be compromising the interest of his client. The profession has not created an image of integrity where lawyer can be seen with the other counsel to settle the case without compromising the client's interest. The only place where the lawyer in India can be seen to deal with the matter is in the court room. This leaves little room for the lawyer to find a suitable compromise in settling a case and this prolongs the cost and time for finding other resolution of the matter. There is need to explore other methods of solving the problem such as Alternative Dispute Resolution where lawyers on the opposite sides can sit with each other and resolves cases and reduce the cases reaching the court.

Settlement before trial

About 80% of the cases are settled before reaching trial in Canada, in part because the lawyers are able to assess each other's positions and find a resolution. The other reason for settlement is the extremely high cost of doing a trial in Canada. The settlement does expedite the final resolution of the matter and saves costs to all parties. In India a much smaller proportion of the cases are settled before the trial. The indigenous Lok Adalat and Panchayat Systems which are present in India for a long time are being revived to help divert the cases away from the judicial system and resolve them.

Block Fees

Lawyers in India usually work with a particular litigation for which a block fee is quoted regardless of when the matter is settled. If the system of fees is made more flexible and more based on time it would help the lawyers aim at the resolution of the matter.

Alternative Dispute Resolution

It is very helpful to have alternative means of resolving cases without taking a case to court such as mediation, arbitration and negotiations. The process of mediation is getting formalized and is becoming more common now in Canadian jurisdictions. In the adversarial court system the lawyers are required to protect their client's interest and in this adversarial atmosphere they may not have the incentive to settle. Alternate Dispute Resolution methods such as Mediation and Arbitration are helpful as alternate means of settling disputes and when they are settled it reduces the work load of the courts. More of these methods need to be explored in India.

Mediation

Mediation presents a much better method of bringing the two parties and resolving the differences face to face and without the elaborate court procedures. It also creates a different atmosphere. This type of approach can also be integrated in the litigation process where the mediation procedure is permitted to be introduced as a means of resolving the dispute before it reaches the final stage of trial which is expensive for the litigants and slows down the judicial process.

Pleadings

The pleadings in India tend to be one sided and gross emphasis on client's position instead of reflecting the position that can be taken in the light of the facts. Improved quality of pleadings can help the opposing counsel and the court understand the matter more objectively. Procedural rules should be used more vigorously to strike out the pleadings or require amendment when necessary and permit the moving forward of the matter in a timely fashion.

Computers

The larger cities in India have lawyers who use computers. Computers are not yet common in smaller cities. Where they are they are very much helping the quality of the written material, pleadings or conveyancing documents which look professional. The research through computers is also becoming common. More and more of the Indian laws and cases are being put on the internet. Computers will play a vital role in the future in India as India a large pool of computer expertise.

Code of Ethics

The model of the self governing profession was inherited by India from the English system. However, when it comes to disciplining the individual member the cohesion within the profession is too strong and it is very difficult to discipline a lawyer. The bar associations need to move forward with the recognition that there will be situations where some lawyers need to be disciplined. If there is immunity from discipline the profession cannot move forward in the higher standards that need to be brought to improve the system.

Lawyer Reputation

The reputation of the lawyers as a whole is very important in the community. They should be perceived as guardians of justice rather than users of the system for their own gain. To change the negative perception of the legal institutions, the institutions must work hard and earn their respect. In doing so it takes a long time and dedicated effort of all the institutions, including lawyers and courts, to show the public that together they are providers of service to the

community and the community deserves the highest standards of practice to deliver justice in a timely fashion. Improvements are taking place and it will take time for the community to recognize it. More financial and other resources are needed to support the system. As the country makes economic progress more of the funding should become available for the improvement of the system.

Lawyer's Image

A practical part of the improvement of the image also comes from physically having offices that have a reasonable appearance and filing systems and equipment such as a typewriter and computer which would show to the public that the lawyer's practice is professional and they can expect professional standards of work from lawyers. Leading lawyers in India are already moving in facilities that rival any in the west. The court house in Ahmedabad that I visited was a new building and impressive.

Mentorship

In the last few years Ontario has started a Mentorship Programme under which the senior lawyers with experience mentor a junior lawyer. Historically in England the Inns of Court had and still have dinner system where the senior lawyers met junior lawyers and shared their experiences. It is a very good way to share your experiences and inspire the new generation of lawyers to excel in the legal profession. Where there are younger lawyers who are enthusiastic about the profession, they should be supported and encouraged.

Judiciary

India is a large country with a population of a billion people. Indian Judiciary faces a heavy work load and number of judges have not increased in proportion to the increase in population, and this hampers their ability to resolve cases promptly and within reasonable time. Time guidelines should be set for criminal and civil cases for final

resolution, and it should be possible to have a typical criminal case resolved within a year and a civil case at a lower level resolved in two years.

Professional Competence

The system for judicial appointment is very important in obtaining the quality of the decisions. Legal decisions are human judgments of evaluation of law and facts. In Canadian jurisdictions the lawyers are not by law permitted to be Judges until they have ten years of experience. The appointments process should not be political. Only the best lawyers who are competent and ethically sound should be appointed. During the tenure of a Judge he will make many decisions which profoundly affect many lives and society. They also create an image of integrity of the legal system. If the image is not good the citizen will resort to self help schemes to obtain his remedy.

Procedure

The procedural rules should be enforced vigorously. For example if a defence is not filed by the defendant within the time limit the court should allow a default judgment. Enforcing procedural steps would help expediting the resolution of the matter instead of the parties always contesting adjournments.

Transcribing

Each trial should be recorded by a Voice Recording System. This enables a proper transcript to be prepared and an appeal filed where required. It ensures that the evidence given and the dialogue of the parties in the court room is taken seriously by each party. Transcript of such recording enables the higher court to hear the appeal more effectively.

Dignity

The court rooms and the facilities used by Judges and Lawyers should carry dignity. The court rooms should have

reasonable appearance and at the hearing only one party should be permitted to talk at a time. Decorum and the polite language add to the dignity of the court and the respect that litigants have for the decisions made by the courts.

Accessibility

Indian Courts are far more accessible in terms of low amounts of fees required to start an action. Canadian Courts with higher filing fees make access to courts more difficult. However, recently those who cannot afford court fees can claim exemption from payment. The Canadian courts are heavy in technical procedural rules which are drafted for the protection of the litigants but they make the access to courts expensive by requiring trained lawyers to deal with these rules.

Legal support

Like the medical support society needs an orderly and effective legal system for its citizens to develop the economy and protect the human rights. India is moving forward fast and the legal system needs to catch up with the economic advances in the country.

-The writer was a lawyer and now a Deputy Judge.

The Judge admonished the witness, "Do you understand that you have sworn to tell the truth?:

"I do."

"Do you understand what will happen if you are not truthful?"

"Sure," said the witness. "My side will win."

JUSTICE DELAYED

❑ **Bhaskar DC**

"Without Justice, life would not be possible and even if it were it would not be worth living" .....

(Justice) Giorgio Del Vecchio

The word 'justice' has been derived from the actual concept of justness which acts as the primordial factor for any state to provide for its populace.

It is a generic term, which includes both procedural (Natural) and substantive (Social) justice. In India, justice has been adorned as the very embodiment of God, whose sole mission is to uphold justice, truth and righteousness. Under our Indian constitution justice sets the ultimate goal for all of us to serve our nation. It is a mixture of natural and social justice as evident from Preamble and Part IV of our Constitution.

Democracy And Indian Judiciary

In a democratic country like India, judiciary plays a vital role in establishing a state of justice. Therefore, being the watchdog, they are not allowed to shift their burden to others for men- failure to establish an actual State of Justice. It is judiciary on which millions of people have struck their faith of getting justice. It has the capability of imparting justice to the aggrieved. It is that part of our constitution which acts as its Messiah. It is that structure of our society, which cemented its place next to the God and if not properly dispensed will shatter down the entire trinity of democratic instrumentalists with checks, balances, parliamentary structure and the judicial facets of our Constitution.

Delay in disposal of cases is considered as one of the most vexed and worrying problem. It is the code of procedures, which makes it so worse. However, personality like Nani Phalkiwala opined that Justice in common parlance

is considered as blind but in India it is lame too and hobbles on crutches. It is on the verge of collapse with more than 30 million cases clogging the system. There are cases that take so much of time that even a generation is too short to get any type of redressal.

Procedures must be utilized to advance the cause of justice but in India it is used to thwart it. Justice is something which should be dispensed as early as possible otherwise it will be too late for a critic to add a common adage to that 'Justice Delayed is Justice Denied'. Current situation shows that it will take more man 300 years to clear the backlog of cases in Indian courts. In Anil Rai vs. State of Bihar case, Sethi J stated that delay in disposal of the cases facilitates the people to raise eyebrows, sometime genuinely, which if not checked, may shake the confidence of the people in this judicial system.

Reasons For Delay In Disposal Of Cases

Firstly, people now days are in a habit of dragging their grievances to the court of law, which can be solved outside the purview of the court. Secondly, non-adherence with the code properly by the judges and the lawyers both aggravate the situation. Thirdly, the judicial system is not equipped with adequate number of judges required. Fourthly, Government itself is contributing maximum to the backlog.

While it can be understood that delay may occur in the civil cases but the same is not expected in the criminal proceedings. If we compare these two on the basis of the disposal of the cases then it is very much evident that criminal justice system is at its worst and the common man has lost his trust in the efficacy of the criminal redressal system.

On average 50 lakh crimes are registered every year, which are sought to be investigated by the police. The pendency of criminal cases in subordinate courts is 1.32 crore and the effective strength of judges is 12,177. Pending cases of the under trials in criminal cases are 1.44 crores. In an average 19 percent of the pending cases are disposed every year

Delayed decisions, piled up files and indefinitely extending litigation, never serve their purpose. They are the real roadblocks to development of any state or nation. Generally, delayed decisions take its maximum toll from the under privileged section. Consider the condition of the poor victims of Bhopal gas Leak disaster, which took a toll of 15000 people. Twenty four years have passed to that ghastly incident; still now victims are fighting for the compensation, which fails to measure up the damage caused to them.

Social justice will be possible only if the entire concept of egalitarian politico-social order is followed, where no one is exploited, where every one is liberated and where every one is equal and free from Hunger and poverty. The proverb 'Justice Delayed is Justice Denied' is proved as it is denied to the poorest of the poor. Providing basic necessities to them will amount to Justice because the definition of justice varies from individuals to individuals on the basis of their economic conditions. According to B.P.Singh J the situation today is so grim that if a poor is able to reach to the stage of a high court, it should be considered as an achievement.

At this juncture the author is of the opinion that judiciary obviously owes an obligation to deliver quick and inexpensive justice irrespective of the complicated procedures but it cannot be hurried to be buried. Cases should be decided for imparting justice not for the sake of its disposal. Secondly, Arbitration procedure must be utilized as a better option for quick disposal of cases. Finally, to conclude with the words of Lord Hewet as it is of fundamental importance that justice should not only be done, but should manifestly and undoubtedly be seen to be done.

-Final Year Law Student, Haldia Law College, Haldia, West Bengal

भीड़ में कोई आदमी नहीं था

❑ बनेचन्द मालू

किसी बेचारे का एक्सीडेंट हो गया।
कार तो भाग गई पर लोगों को भी नहीं आई दया।
खून से लथपथ पड़ा था सड़क पर।
कोई पास के अस्पताल नहीं ले जा रहा था
क्योंकि पुलिस का था डर।
सवालों का जवाब देना होगा।
कैसे हुआ, किसने देखा, कहना होगा।
बाद में थाने भी जाना होगा, कोर्ट में देनी होगी गवाही।
इस तरह घसीटा जाना पड़ेगा, क्यों लें ऐसी वाह वाही।
समय बीत गया, बेचारा ढेर हो गया।
किसी नवयुवती का सिंदूर, नन्हें बच्चों की आशा
चिर निद्रा में सो गया।
घर में कोहराम मच गया, मातम छा गया।
हंसी-खुशी भरे जीवन को काल-चक्र खा गया।
आने जाने वाले सान्त्वना दे रहे थे।
पूछ पूछ कर घटना का जायज़ा ले रहे थे।
एक औरत अफ़सोस जता रही थी,
कह रही थी व्यस्त सड़क थी भीड़ तो बहुत थी।
फिर पड़ा क्यों रहा, अस्पताल भी पास में वहीं था।
मैंने कहा भीड़ तो बहुत थी, अस्पताल भी पास में वहीं था।
पर अफ़सोस, भीड़ में कोई आदमी नहीं था।

– 5 बी श्री निकेत, 11 अशोका रोड,
अलीपुर कलकता-700027

लड़की के विकास में अवरोध-कमतर आकलन

❑ अंजु दुआ जैमिनी

आठ-दस वर्ष की होते-होते बच्ची माँ-बाप तथा घर के अन्य सदस्यों का व्यवहार पहचानने लगती है। घर में छोटे या बड़े भाई के प्रति घर के वयस्कों के मन में जो स्नेह उपजता है वह बच्ची के प्रति नहीं होता, इस तुलनात्मक स्नेह को लड़की खूब समझती है। यहीं से उसके मन में भाई के प्रति ईर्ष्या का भाव जन्मता है। उसे लगता है कि वह भी लड़का हुई होती तो लोग उसे भी बराबर की तवज्जो देते। हमारे समाज में लड़की को कभी महत्व दिया ही नहीं गया। उसे थोड़ा-बहुत स्नेह अवश्य दिया जाता है पर मनमानी करने की छूट नहीं। यही छूट वह चाहती है। वह चाहती है कि भाई को जितना स्नेह-सम्मान दिया जाता है, उतना ही उसे भी दिया जाए।

घर में असमान व्यवहार होता है और उस पर पहरे बिठाने की मुहिम शुरू हो जाती है। यदि भाई छोटा है तो लड़की से उम्मीद की जाती है कि वह भाई की देखभाल करे। इसके विपरीत यदि भाई बड़ा है तो उससे यह उम्मीद की जाती है कि वह बहन पर निगरानी रखे। **देखभाल और निगरानी में फर्क है** और इसी मानदण्ड पर लड़के-लड़की का पालन-पोषण किया जाता है।

हमारे घरों में ऐसा दृश्य देखने को कभी नहीं मिलेगा कि छोटी बहन कुर्सी पर बैठी है और भाई उसके लिए खाना लाया और खिलाने लगा। इससे उल्ट अवश्य दिखेगा कि भाई कुर्सी पर बैठा है, बहन खाने की थाली लाती है और भाई को देती है। भाई खाना खाता है, बहन पानी का गिलास रखती है और उसे खाते हुए देखती है। भाई खाकर उठ जाता है, बहन उसके जूठे बर्तन समेटती है और रसोई में रख आती है। माँ उसे शाबाशी देती है। पिता

के मन में कोई भाव नहीं क्योंकि बेटी घर की सेवा करती है, इसमें नया कुछ भी नहीं।

यदि भाई छोटा है तो निश्चित् ही माँ का दुलारा है क्योंकि माँ के शब्दों में 'बड़ी मन्नतों के बाद पैदा हुआ है।' बेटी अपने-आप समझ जाती है कि वह बिना मन्नतों के पैदा हुई है, वह अनावश्यक है। उसका कार्य माँ की तरह घर-भर की देखभाल करना है। घर में खिलौनों पर उसका हक वहीं शुरू होता है जब भाई उन खिलौनों से न खेले या स्वत: उसे दे। (लड़कियों को क्या चाहिए? कुछ भी तो नहीं।)

बच्ची के मन में भाई के प्रति दुराग्रह का बीज यह समाज बोता है। भले ही लड़कियाँ चाँद पर हो आएँ, घरेलू काम-काज उनके ही हिस्से आएगा। लड़के तो बाहर के कामों के लिए हैं, भारी कामों के लिए हैं, फिर उन्हें पढ़ना भी तो है और खेलकूद से उनका शरीर मजबूत बनेगा(क्या घर का कामकाज जिसमें कुएँ से बाल्टी भर कर लाना, कपड़े धोना, साफ़-सफ़ाई करना, धान के खेत में मज़दूरी करना, गोबर थापना, तसला-भर भूसा-चारा उठाना ये सब हल्के काम हैं?) ये सब कार्य लड़कियों के जिम्मे आते हैं। 'पढ़ना उनके लिए ज़रूरी नहीं। कौन उन्हें डॉक्टर-कलैक्टर बनाना है? बन भी जाएँगी तो ससुरालियों के काम आएँगी। हमारे लिए क्या करेंगी?' यह मानसिकता बच्चियों के विकास में अवरोधक का कार्य करती हैं।

बड़ा होकर लड़का अपनी बीवी के साथ रहता है और अलग हो जाता है। वह अपनी कमाई का हिस्सा माँ-बाप को नहीं देता क्योंकि अब उसका अपना परिवार है और उसे भी पालना है। माँ-बाप बचपन में बेटा-बेटी में भेद करते हैं, और बड़ा होकर बेटा 'अपने परिवार' और 'अपने माँ-बाप के परिवार' में भेद करता है।

बेटी घर का काम भी करती है, अच्छा खाने को भी तरसती है, पढ़ाई से भी हटा ली जाती है, तो भी वह माँ-बाप को प्यार करती है, उनका भला चाहती है। इतना सब जानने के बाद भी क्या भेदभाव करने वाले अभिभावकों की आँखों पर पट्टी पड़ी रहेगी?

लड़की को सदैव लड़के से कमतर आंका जाता है, पर हर जगह नहीं। यदि घर में कोई शादी-ब्याह या उत्सव है तो लड़की उन्हें शक्तिशाली लगती है क्योंकि वह चुटकियों में काम कर लेती है। वह दौड़-दौड़ कर महमानों की

आवभगत करती है, उन्हें पानी पिलाती है, खाना खिलाती है, जूठे बर्तन समेटती है और घर सहेजती है। इस मामले में भाई निकम्मे हैं। क्यों? क्योंकि उन्हें बचपन से ताकीद की जाती है कि घर का कामकाज लड़कों को शोभा नहीं देता। पग-पग पर लड़की भेदभाव सहती है।

निम्न परिवारों में जहाँ पैसे की चिक-चिक ज़्यादा होती है वहाँ लड़कियों की हालत बहुत बुरी होती है। घर में यदि पैसा आता है तो वह घर के पुरुष-सदस्यों पर पहले खर्च होता है, बाद में यदि कुछ बचता है तो लड़की के हिस्से आता है।।

एक धर्मग्रन्थ में लिखा है कि जो व्यक्ति झूठी गवाही देता है वह अगले जन्म में स्त्री बनता है। अब इसमें कितनी सच्चाई है, इसकी गहराई में जाना कठिन है पर इससे यह सिद्ध होता है कि ऐसी सोच लड़की को कमतर महसूस कराती है।

अब बात करते हैं मध्यमवर्गीय या उच्चवर्गीय परिवार की। यहाँ लड़का-लड़की में भेदभाव इस तरह नहीं होता। चूँकि रुपए-पैसे की समस्या नहीं अत: खरीदारी आदि में भेदभाव नहीं होता। भेदभाव होता है राय मनवाने के बारे में। बातें छोटी-छोटी हैं पर लड़की के मन पर दुष्प्रभाव डालती हैं।

खाने में क्या बनेगा, कौन से रेस्तराँ में जाना है, कौन सी जगह घूमने जाना है, पिकनिक-स्पॉट क्या हो, कौन सी फिल्म देखने जाना है; ये तमाम बातें घर में बेटा-बेटी दोनों से पूछी जाती हैं पर महत्व बेटे के निर्णय को दिया जाता है।

लड़के या लड़की का पैदा होना सामान्य घटना है पर हमारे समाज में लड़के के लिए मनौतियाँ माँगना, लड़के के पालन-पोषण में श्रेष्ठता; ये सभी बातें लड़की के मन को कचोटती हैं। व्यक्ति लिंग से श्रेष्ठ नहीं होता कर्मों से श्रेष्ठ होता है। लिंग-भेद के कारण मानसिक प्रताड़ना सहती लड़की बचपन से ही तैयार हो जाती है। उसे समायोजन करना सिखाया जाता है।

भेदभाव की अनेक वजह हैं। सबसे शक्तिशाली वजह है- पुरानी मान्यताएँ। भले ही घर का मुखिया न कमाए, भले ही घर का पुत्र आवारागर्दी में पैसे उड़ाए, फिर भी यही मान्यता है कि घर का पुरुष आजीविका कमाता है। लड़की की कमाई को शुगल-मेले से जोड़ा जाता है या मजबूरी से जबकि लड़की कमाती है घर-भर के लिए। घर का सपूत कमाता है अपने लिए, उसे

अपने ऊपर पैसा उड़ाने का पूरा अधिकार है। लड़की यदि छुटपन से कमाना शुरू करती है तो उसकी कमाई से घर चलाया जाता है। इसके विपरीत लड़का यदि छुटपन से कमाने लगता है तो वह आधा भाग जेब खर्च के लिए रख लेता है और आधा माँ के हाथ पर रख देता है। समझ आते-आते वह कई बार माँ के हाथ पर आधा भी नहीं रखता। क्या किसी लड़की को उसकी कमाई का पूरा भाग अपने पर खर्च करते देखा है?

यदि घर में तीन-चार भाई है तो उन्हें यह कहते कभी नहीं सुना होगा, 'काश! हमारी एक बहन होती।' इसके विपरीत यदि घर में तीन-चार बहनें हैं तो उनके मन में उपजाया जाता है, 'काश हमारा भाई होता।' हमारे त्योहार, धार्मिकोत्सव इस भावना को भुनाने से नहीं चूकते। धार्मिक आयोजन हों तो वहाँ भेंटें गाने वाले एकाध गाना अवश्य ऐसा रखते हैं जो बिन भाई की बहनों को भावुक करने में कसर नहीं छोड़ता। राखी के त्योहार पर बहनों का भाई के लिए तरसते देखा है पर बहुत कम भाई ऐसे होते हैं जो बहन के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। बहन है तो भी ठीक और नहीं है तो भी ठीक।

लड़की को लड़के से कमतर आंकने के कारण लड़की में हीन-भावना का जन्म होता है। वह स्वयं को समाज के लिए अनुपयोगी मानने लगती है। यदि बचपन से समानता का व्यवहार किया जाए और उसे आगे बढ़ने के उचित अवसर दिए जाएँ तो उसकी उपयोगिता समाज के लिए किसी भी हालत में कमतर नहीं। घर में बालक-बालिका की स्थिति कुछ यूँ है .....

'पंछी दो जन्मे घर-आँगन

इक पिंजरे, इक फिरदा गगन'

भारतीय समाज को बदलना ही होगा क्योंकि विकास के लिए सबका विकास आवश्यक है और यही देश को उन्नति के शिखर पर पहुंचाएगा।

('मोर्चे पर स्त्री' पुस्तक से उद्धृत)

- 839ए/21सी, फ़रीदाबाद-126001 (हरियाणा)

महात्मा ज्योतिबा फुले

❑ आर. के. श्रीवास्तव

महात्मा ज्योतिबा फुले उन्नीसवीं शताब्दी के महान व्यावहारिक सामाजिक विचारक थे। मानव मुक्ति के सम्बन्ध में उनके विचार दूरगामी प्रभाव डालने वाले थे एवं उसी प्रकार महान् थे उनके कार्य। उनके जीवन में उनके विचारों की पूरी छाप थी। उनके विषय में आज बहुत कम लोगों को ज्ञान है।

ज्योतिबा के पूर्वज सतारा ज़िले के कटगुण ग्राम के निवासी थी। उनका पारिवारिक नाम गोढ़े था। उनके प्रपितामह कोन्डिबा गोढ़े गांव के चौगुले थे। गांव में आपसी झगड़ों के कारण कोन्डिबा जिला पुणे के खण्डावली ग्राम में आकर रहने लगे। बाद में वहाँ अकाल पड़ने पर उनके पुत्र शेतिबा ने पुणे में अपना स्थाई निवास बनाया। वहाँ पर उन्होंने पुणे के शासक पेशवा के लिए फूलों से विभिन्न वस्तुओं का निर्माण प्रारम्भ किया इसी कारण उन्हें नया उपनाम ''फुले'' प्रदान किया गया।

शेतिबा के तीन पुत्र थे - रानो जी, कृष्णा जी एवं गोविन्द। गोविन्द का विवाह चिमनाबाई के साथ हुआ। उनके पुत्रों में से एक का नाम था ज्योतिराव। यही बालक ज्योतिराव बाद में भारत में सामाजिक क्रान्ति लाने वाले महात्मा ज्योतिबा फुले के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ज्योतिराव का जन्म **11 अप्रैल 1827 को हुआ।** जन्म के एक वर्ष के अन्दर उनकी माँ का देहान्त हो गया। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद 1840 में उनका विवाह सावित्रीबाई से हो गया। इस बीच उनकी पढ़ाई छूट गई। किन्तु उनके उत्साह को देखते हुए उनके पड़ोसियों मुंशी गफ्फ़ार बेग एवं लिजित ने उन्हें पुनः अंग्रेज़ी में शिक्षा ग्रहण करने की सलाह दी। परिणाम स्वरूप उन्होंने 1841 में एक अंग्रेज़ी स्कूल में शिक्षा प्राप्त करना आरम्भ कर दिया।

स्कूल में पढ़ाई के दौरान उन्होंने थामस पेन द्वारा लिखित Right of

Man नामक पुस्तक का अध्ययन किया जिसके द्वारा उन्हें सामाजिक परिवर्तन का नया ज्ञान प्राप्त हुआ। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वे अपने पिता के साथ व्यवसाय में लग गये। इसी समय एक ऐसी घटना घटी जिसने उनके जीवन की दिशा ही मोड़ दी। एक मित्र के विवाह के अवसर पर कुछ ऊंची जाति के लोगों ने जाति के आधार पर उनका घोर अपमान किया। इस सामाजिक अपमान का उन्होंने विरोध किया। वे दलितों को ऐसे अपमान से बचाने पर विचार करने लगे। उन्होंने निश्चय किया कि शिक्षा ही ऐसा शक्तिशाली अस्त्र है जिसके द्वारा दलित व अति दलित समुदाय के लोगों को मुक्ति दिलाई जा सकती है। इसी को आधार बनाकर उन्होंने दलितों की मुक्ति के लिए संघर्ष प्रारम्भ कर दिया।

वर्ष 1848 में महात्मा फुले ने सर्वप्रथम बालिकाओं के लिए विद्यालय का आरम्भ किया। इस प्रकार वे बालिकाओं के लिए विद्यालय की स्थापना करने वाले प्रथम भारतीय बन गये। उन्होंने सर्वप्रथम महिलाओं को शिक्षित करने के लिए अपनी पत्नी सावित्री देवी को बालिका विद्यालय में पढ़ाने के लिए तैयार किया। सावित्री देवी को इस कार्य में धर्मान्ध लोगों के कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। किन्तु फिर भी ज्योतिराव एवं सावित्री बाई ने साहस पूर्वक इसका सामना किया एवं बड़े लगन से अपने संघर्ष को जारी रखा। उन्होंने ऐसे अनेकों स्कूल खोले एवं अन्य लोगों को भी स्कूल खोलने का प्रोत्साहन दिया। उनके द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किये गये कार्य को ब्रिटिश सरकार द्वारा मान्यता प्रदान की गई एवं 16 नवम्बर 1852 को एक विशेष आयोजन में उनको सम्मानित किया गया। इस समय उनकी आयु केवल 25 वर्ष की थी।

शिक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रकार के सुधार करने का भी उन्होंने प्रयास किया। 1882 में उन्होंने शिक्षा आयोग के अध्यक्ष सर विलियम हंटर को शिक्षा सुधार के लिए आवेदन पत्र दिया जिसमें प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने एवं दलित बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देने पर ज़ोर दिया गया। उनका दृढ़ विचार था कि शिक्षा को व्यवसाय से जुड़ा होना चाहिए जिससे अधिक से अधिक विद्यार्थी आकर्षित हों एवं बेरोज़गारी की समस्या का भी हल निकल सके। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने कृषि को भी पाठ्यक्रम में शामिल करने पर ज़ोर दिया। आज एक शताब्दी के बाद भी ज्योतिबा फुले के विचार प्रासंगिक हैं। उन्होंने शिक्षा के लिए जिन सिद्धान्तों

का प्रतिपादन किया उनके अनुसार आज प्राइमरी शिक्षा को अनिवार्य करने एवं शिक्षा को व्यवसाय से जोड़ने के प्रयास हो रहे हैं।

सामाजिक शिक्षा के प्रसार प्रचार के लिए उन्होंने 24 सितम्बर 1873 को 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। इसके द्वारा उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि मनुष्य अपने गुणों के आधार पर महान होता है जाति के आधार पर नहीं। उनका मानना था कि ईश्वर की पूजा के लिए किसी पंडित या मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं है। सत्यशोधक समाज के सिद्धान्त के अनुसार विवाह सम्पन्न कराने के लिए किसी पंडित की आवश्यकता नहीं थी। एक बार बिना पंडित के विवाह सम्पन्न कराने पर ज्योतिराव एवं समिति के सदस्यों के विरुद्ध मुकदद्मा दायर कर दिया गया। ज्योतिराव ने मुकद्दमें में लड़कर जीत हासिल की। सत्यशोधक समाज द्वारा भाईचारे एवं समानता का प्रचार किया गया।

महात्मा फुले ने दलितों के उत्थान के अतिरिक्त अन्य सामाजिक बुराईयों पर भी ध्यान देकर उन्हें दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने विधवाओं की दशा में सुधार के लिए अनेकों कार्य किये। उस समय विधवाओं का जबरन मुंडन कराने की प्रथा थी। महात्मा फुले की प्रेरणा पर नाइयों ने हड़ताल करके विधवा का मुंडन करने से मना कर दिया। उन्होंने विधवा विवाह को प्रोत्साहन दिया एवं विधवा विवाह कराये भी। विधवाएँ प्राय: शोषण का भी शिकार हो जाती थीं जिसके कारण अवांछित संतान की हत्या करनी पड़ती थी। ऐसी महिलाओं के लिए उन्होंने बाल हत्या प्रतिबंधक गृहों की स्थापना की जिससे ऐसे नवजात शिशुओं के जीवन की रक्षा हो सके। उन्होंने प्रसूति गृहों की भी स्थापना की जिससे प्रसव के समय माँ व बच्चे सुरक्षित व स्वस्थ रह सकें। देवदासी की प्रथा के अनुसार बालिकाओं का विवाह ईश्वर से कराकर उसे देवदासी के रूप में मंदिर में रहने पर मजबूर किया जाता था। ज्योतिबा ने इसका भी विरोध किया व इस प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया।

उन्होंने किसानों के बीच जाकर उनके साथ काम करके उनकी समस्याओं को समझकर उन्हें सुलझाने का भी प्रयास किया। किसान प्राय: साहूकारों से रुपये उधार ले लेते थे जो अत्यधिक ब्याज पर होता था। उधार न चुका पाने की अवस्था में साहूकार उनकी जमीन को अपने नाम करा लेता था। ज्योतिबा ने किसानों में जागरूकता पैदा की जिससे वे महाजनों के अन्याय के शिकार

न बनें। विभिन्न फैक्टरियों में काम करने वाले श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए उन्होंने श्री नारायण मेघा जी लोखण्डे के साथ मिलकर 'बाम्बे मिल लेबर एसोशिएशन' नामक प्रथम भारतीय श्रमिक संगठन की स्थापना की।

एक बार ब्रिट्रेन के राजकुमार भारत आये व महात्मा ज्योतिबा फुले के एक साथी श्री हरी राव जी चिपलुंकर ने उनके सम्मान में एक प्रीतिभोज का आयोजन किया। इसमें ज्योतिबा को भी भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया। वे एक निर्धन किसान की ही वेशभूषा में प्रीतिभोज में भाग लेने के लिए आए एवं ब्रिटिश राजकुमार को शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं से अवगत कराकर ब्रिट्रेन की महारानी तक अपने संदेश को भेजने का निवेदन किया। इससे स्पष्ट होता है कि वे कितने सरल एवं आत्मविश्वासी थे। उनका यह व्यवहार महात्मा गांधी के जीवन की उस घटना की याद दिलाता है जब वे लंदन में गोलमेज़ कान्फ्रेन्स में भाग लेने के लिए एक साधारण-सी धोती पहन कर गये थे।

महात्मा फुले ने अपने जीवन काल में अनेकों पुस्तकों की रचना की जिनमें नाटक, कहानियाँ, कविताएँ एवं सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित पुस्तकें हैं। उनकी अंतिम रचना 'सार्वजनिक सत्यधर्म पुस्तक' है जिसका प्रकाशन उनके मरणोपरान्त 1891 में हुआ। इसमें उन्होंने जनसाधारण के लिए मानव धर्म की व्याख्या की है।

इस प्रकार महात्मा ज्योतिबा फुले ने अपना सारा जीवन दलितों व नीची जातियों के उत्थान के लिए लगा दिया। यही नहीं उन्होंने किसानों एवं श्रमिकों की समस्याओं को भी सुलझाने का प्रयत्न किया एवं कार्य किये। वे एक अच्छे साहित्यकार भी थे। इन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने अपने जीवन यापन के लिए स्वयम् व्यवसाय करके धनोपार्जन किया। उन्होंने खेती की, व्यापार चलाया व पुल एवं भवन निर्माण के ठेके भी लिये।

अपनी आय के अधिकांश भाग को उन्होंने समाज सेवा में व्यय किया। इस प्रकार वे तन, मन, धन से समाज के उत्थान में लगे रहे। विपरीत परिस्थितियों में समाज के प्रत्येक वर्ग के सर्वांगीण विकास के लिए कार्य आरम्भ करने वाले वे भारत के प्रथम व्यक्ति थे।

-66/2 बी, स्टेनली रोड, इलाहाबाद

युवा नव धनाढ्यों के लिये एक वित्तीय परियोजना

❑ अनुपमा सिंहल

समाचार पत्रों में प्राय: पढ़ने को मिलता है कि आई. आई. एम. या आई. आई. टी. के नये स्नातकों को कुछ कम्पनियों ने 20 लाख से डेढ़ करोड़ वार्षिक वेतन पर नियुक्ति दी है। आर्थिक उदारीकरण के पश्चात् देश में यह एक नई लहर है। इस लहर ने एक नये धनाढ्य युवा वर्ग को जन्म दिया है। इस वर्ग की अपनी जीवन शैली एवं खर्च करने की प्राथमिकतायें हैं। किन्तु आश्चर्य तब होता है जब इस वर्ग के सदस्य भी कभी-कभी आर्थिक संकट में फंसे दिखलाई पड़ते हैं एवं ऐसा होता है समुचित वित्तीय प्राथमिकताओं एवं परियोजना के अभाव में।

जहाँ तक वित्तीय प्राथमिकता का सवाल है तो आज का युवा-वर्ग केन्द्रित है-मोबाइल फ़ोन के बिल, क्रेडिट कार्ड के भुगतान तथा सैर सपाटे पर। आँकड़े बताते हैं कि नई उभरती धनाढ्य युवा पीढ़ी आज इतना कमा रही है कि वर्तमान समय में वह आसानी से बिना कर्ज़ लेकर उन वस्तुओं पर बिना हिचक खर्च कर सकती है जो अब तक विलासिता के साधन समझे जाते थे। परन्तु केवल इसलिये कि आप पर्याप्त धन कमा रहे हैं और खर्च करने में सक्षम हैं, इसका मतलब यह नहीं कि आप वित्तीय परियोजना की उपेक्षा करें।

ज़िन्दगी बहुधा मरफी लॉ के निर्मम नियम से प्रभावित हो जाती है। जब हमने आरामदायक ज़िन्दगी व्यतीत करने लायक धन इकट्ठा कर लिया, तभी कुछ ऐसा हो जाता है कि सब कुछ बरबाद हो जाता है- यह एक्सीडेंट भी हो सकता है जो आपको ज़िन्दगी भर के लिये अपंग बना दे या आपके घर को आग बरबाद कर दे या कोई घातक बीमारी आपको जकड़ ले। यह एक काल्पनिक तस्वीर है लेकिन यह सब ज़िन्दगी में घटित होता है और किसी

के साथ भी हो सकता है।

हर धनी युवा दम्पति के दो प्राथमिक लक्ष्य होने चाहियें। बचत योजना का विन्यास तथा उधार का बहिष्कार। अपने भविष्य के लिये आपको 360^0 वित्त नियोजन चाहिये जिसके छः सूत्र है।

1. निवेश योजना
2. बीमा नियोजन
3. बच्चों के भविष्य की योजना
4. कर नियोजन
5. अवकाश ग्रहण की योजना
6. नकदी प्रवाह नियोजन

सिर्फ एक ही तरीका है जिससे आप धन सम्पत्ति बना सकते हैं और आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो सकते हैं और वह है अन्धाधुन्ध खर्च न करके बचत करना एवं उसका समुचित निवेश करना।

आपकी नौकरी के शुरुआती समय में यह हिस्सा एक बड़ा प्रतिशत हो सकता है लेकिन शादी के बाद यह प्रतिशत कुछ कम हो जायेगा। पर ध्यान रखें कि यह 10% से कम नहीं हो।

अगर आप अपने वित्तीय भविष्य को सुरक्षित करना चाहते हैं तो आपके पास ऐसी योजना होनी चाहिये जो आपको निवेश करने पर कर भार को कम करने, मुद्रास्फीती को पछाड़ने और अच्छी तरह से आपके पैसे का संचालन करने में आपका सहयोग करे।

अतः जितना धन का होना ज़रूरी है उससे कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण है उस धन का सही प्रयोग और निवेश।

आइये हम देखते हैं कुछ ऐसे कार्य जो आप अपने धन से सम्पादित कर सकते हें:-

1. बीमा नियोजन : (अपने को बीमाकृत करें) विशेषज्ञों का कहना है कि आप सभी सम्भावित खतरों के लिये बीमा का आवरण ज़रूर लें। अगर आप मुख्य बड़े खतरों से अवगत हैं और सही दिशा में निवेश करते हैं तो आप काफ़ी हद तक अपने को सुरक्षित कर सकते हैं। बीमा पॉलिसियाँ निम्न प्रकार

की हो सकती हैं

टर्म इन्शोयरेंस (अवधि बीमा) पॉलिसी : एक शुद्ध जोखिम आवरण योजना जो आपके जीवन को अनिश्चितताओं से सुरक्षा प्रदान करती है।

पर्सनल एक्सीडेंट इन्शोयरेंस पॉलिसी : यह पॉलिसी बीमा धारक की मृत्यु या शारीरिक चोट की घटना में मुआवज़ा देती है।

हेल्थ इन्शोयरेंस पॉलिसी : यह पॉलिसी बीमा अवधि के दौरान भारत भर में मुफ्त इलाज की सुविधा प्रदान करती है। दावों का भुगतान पार्टी प्रशासकों द्वारा होता है। यह प्रशासक इन्श्योरेंस कम्पनी के द्वारा सूचीबद्ध होते हैं ताकि बीमाधारक को बिना किसी परेशानी के अस्पताल में दाखिला और विमुक्ति मिल जाये।

2. बच्चों के भविष्य के लिये योजना : बच्चों के कैरियर निर्माण में निवेश करना भी एक सबसे अहम पहलू है। लड़के की शिक्षा एवं जब वे अपना कैरियर या प्रोफेशनल जिन्दगी का प्रारम्भ करें उस समय के लिये समुचित धन उपलब्ध होना चाहिये तथा लड़कियों के लिये उनके विवाह ही नहीं बल्कि विवाहोपरान्त रिश्तेदारी निभाने के लिये पर्याप्त व्यवस्था नियोजन भी अनिवार्य है। उपरोक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य के साथ निवेश करें। शेयरों (Equity Stock) में निवेश करना श्रेयस्कर है।

ध्यान रखें कि आपके निवेश निम्नलिखित मापदण्डों को पूरा करें:-

1. जिस कम्पनी में निवेश करें वह एक मज़बूत प्रबन्ध कौशल और प्रतिष्ठित समूह की सदस्य हो।

2. कम्पनी एक ऐसे क्षेत्र से सम्बन्ध रखती है जोकि 10 साल के बाद भी निरन्तर तरक्की करती रहे।

3. कम्पनी के शेयर के मूल्य अभी पूरी तरह से खुले नहीं हों।

4. अन्त में यह भी ध्यान रखना चाहिये कि सारा निवेश एक ही जगह नहीं करना चाहिये। कम्पनी के क्षेत्र और समूह को ध्यान में रखते हुये निवेश की विविधता बनायें।

3. कर नियोजन : अगर आप कर दाता के दायरे में आते हैं तो आपके लिये सबसे अहम है कुछ ऐसे निवेश जो आपके कर भार को कम करने में

सहायक हों। एक व्यक्ति कुछ ऐसी कर बचत निवेश योजनाओं जैसे पारंपारिक PPF, NSC, LIC से लेकर आज के युग के Dynamic Mutual Funds (ELSS) में निवेश करके 1,00,000/- तक कर की बचत कर सकते है।

4. अवकाश ग्रहण के उपरान्त : अधिकतर मनुष्य उम्र के अन्तिम पड़ाव पर आकर पछताते हैं कि युवावस्था में हमने कुछ बचत और निवेश नहीं किया। अवकाश ग्रहण परियोजना एक उम्र के बाद हमारे जीवन का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिये। मुद्रा स्फीति भी एक ऐसा ही अहम कारण है

5. अपने को आकस्मिक घटनाओं के लिये तैयार करें : आपातकाल अपने आने की पूर्व सूचना नहीं देता। इसका मतलब यह नहीं कि हम उनकी ओर से निश्चिंत् हो जायें। ऐसे समय के लिये पहले से तैयार रहे। ऐसे समय के लिये कुछ धन ज़रूर बचा कर रखें। कितना इसका कोई नियम नहीं है पर अपने सम्पूर्ण निवेश के 10-15% को कम जोखिम भरे एवं शीघ्र मिल जाने वाले निवेशों में लगाना आपको ऐसी घटनाओं के लिये अच्छा आवरण दे सकता है।

6. परोपकार को न भूले : धर्म कार्य एवं दान बहुत ज़रूरी है। यदि आपके पास धन है तो उसे कम भाग्यशाली व्यक्तियों के साथ ज़रूर बांटे। यद्यपि कुछ दान कर लाभ के लिये विशेषित होते हैं परन्तु हम आपको सलाह देंगे कि आप दान दें, बिना यह चिन्ता करे कि आप उससे किस प्रकार लाभ उठा सकते हैं।

अन्त में:-

- आर्थिक स्वतंत्रता का मतलब है कि आपकी जीवन शैली बिना किसी नौकरी या अन्य किसी काम के भी परावलंबी न हो जाये।
- सम्पत्ति आमदनी उत्पन्न करती है, तथा ऋण आमदनी को नि:शेष करते है। अत: जहाँ तक संभव हो सके ऋण की अपेक्षा सम्पत्ति का चुनाव करें।
- अपनी आय का कम से कम 10% हिस्सा निवेश करके आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करें और यह होगी ''आपकी इच्छा शक्ति की प्रलोभनों पर विजय''।

- 14 सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)

स्पांडिलाइटिस नहीं है अब लाइलाज

❑ डॉ॰ यतीश अग्रवाल

समय के साथ हर शै बदल जाती है। यही हाल होता है स्वस्थ, सुकुमार, हंसिनी-सी गर्दन का। जीवन के 35-40 वसंत गुज़रते-गुज़रते यह सरवाइकल स्पांडिलाइटिस से इस कदर घिर जाती है कि उसका इधर-उधर घूमना और ऊपर-नीचे मुड़ना तक दुश्वार हो जाता है।

सरवाइकल स्पांडिलाइटिस क्या है?

यह उम्र के साथ गर्दन की हड्डियों और उनके बीच स्थित जोड़ों में हुई टूटफूट से उपजा आम विकार है। इसमें गर्दन की वर्टिब्रल हड्डियों के बीच की चक्रिका (डिस्क) या तो सूखकर छोटी हो जाती है या अपने स्थान से सरक जाती है। वर्टिब्रल के अगले-पिछले हिस्से में हड्डियों के जोड़ घिस जाते हैं और कहीं-कहीं हड्डी बढ़ने से ये तकलीफ देने लगते हैं। नतीजा बुरा होता है। गर्दन की हड्डियों के पास से गुज़रती धमनियों पर जोर पड़ता है, उस हिस्से में सूजन पैदा हो जाती है और हड्डियों के बीच बने छिद्रों से निकल रही स्पाइनल तंत्रिकाएं भिंचने लगती हैं। डिस्क खिसकर बहुत पीछे चली जाए तो मेरुरज्जु (स्पाइनल कार्ड) पर भी दबाव पड़ सकता है।

सरवाइकल स्पांडिलाइटिस के कारण क्या-क्या तकलीफ हो सकती हैं?

गर्दन के पिछले हिस्से में दर्द होता है। कौन-कौन सी तंत्रिकाएं भिच रही हैं, इस आधार पर सिर के पिछले हिस्से, छाती, कंधे, बांह और हाथ में दर्द रहने लगता है। गर्दन हिलाने-डुलाने या उसे ऊपर करने से दर्द बढ़ जाता है। गर्दन बिल्कुल जकड़-सी जाती है। कभी हाथों में चींटियां-सी रेंगती भी महसूस हो सकती हैं, कभी हाथ सुन्न हो जाते हैं। कुछ लोगों को चक्कर आने लगते हैं और उनका चल-फिर पाना भी मुश्किल हो जाता है।

परीक्षण के लिए क्या जांच हैं?

सच्चाई यह है कि शारीरिक लक्षणों से ही बहुत-कुछ जानकारी मिल जाती है लेकिन ज़्यादातर डाक्टर गर्दन का एक्स-रे अवश्य करते है। लक्षण बहुत गंभीर हों और सर्जरी की ज़रूरत महसूस हो तो गर्दन का एम.आर.आई. भी कराना पड़ सकता है। उससे यह पता लग जाता है कि मेरुरज्जु और तंत्रिकाओं पर कहां-कितना-कैसा दबाव पड़ रहा है।

इलाज के लिए किस विशेषज्ञ के पास जाना चाहिए?

रिहैबिलिटेशन मेडिसिन विशेषज्ञ या आर्थोपेडिक सर्जन के पास दिखाना सबसे अच्छा है। फ़िज़ियोथैरेपिस्ट का भी इलाज में महत्वपूर्ण योगदान होता है।

सरवाइकल स्पांडिलाइटिस के इलाज के लिए क्या उपाय करने पड़ते हैं?

जब तक अधिक तकलीफ़ है तब तक गर्दन को पूरे आराम की ज़रूरत होती है। सरवाइकल कालर पहनने से आराम मिलता है। कालर में कसे रहने से गर्दन हिल-डुल नहीं पाती और विश्राम की मुद्रा में रहती है पर कालर का लाभ तभी है जब उसे सही ढंग से, सही मुद्रा में पहना जाए। दर्द और सूजन से राहत पाने के लिए निम्युलिड, ब्रूफेन, वोवेरान-जैसी दर्द तथा सूजनहारी दवाएं लेनी पड़ती है। पेशियों की अकड़न को भी दवा से दूर किया जाता है अगर चक्कर आ रहे हों तो सिननेरिजिन या दूसरी दवा लेकर मस्तिष्क की ओर खून का दौरा बढ़ाने की कोशिश की जाती है। गर्म सेंक से भी काफी आराम मिलता है। अकड़ी हुई पेशियाँ खुल जाती हैं और गर्दन सक्रिय हो जाती है।

घर पर यह सेंक गर्म पानी में भीगी चादर या तौलिए से लिया जा सकता है जबकि फिजियोथैरेपिस्ट शार्ट वेव डायाथर्मी, अल्ट्रासोनिक या लेजर की मदद ले सकता है। कुछ रोगियों को ट्रैक्शन की भी आवश्यकता पड़ती है ताकि भिच रही तंत्रिकाएं दबाव से मुक्त हो सकें। ये सभी उपाय अस्थायी होते हैं। आगे रोग न बढ़े यह तभी संभव है जब गर्दन की देखभाल पर ध्यान दिया जाए।

गर्दन के नीचे रिसीवर खोसकर घंटों फोन पर बात करना, मेज़ पर बैठ

गर्दन नीचे झुकाये झुकाये घंटों काम करना और उचककर किसी ऊंची रखी हुई चीज तक पहुंचने की आदत गर्दन की पेशियों, हड्डियों और जोड़ों को भारी तनाव से भर देती हैं। जब दर्द और जकड़न से छुटकारा मिल जाए तो गर्दन की पेशियों को मजबूत बनाने के लिए व्यायाम शुरू कर देना भी ज़रूरी है। गर्दन सीधी रखते हुए कुर्सी पर बैठ जाएं। एक हथेली दूसरी पर कस लें और दोनों को ललाट के ऊपर रखें। अब हथेलियों से ललाट को पीछे की ओर धकेलने का प्रयत्न करें लेकिन गर्दन की पेशियां तानकर ललाट को पीछे न जाने दें। पांच तक गिनें फिर आराम की मुद्रा में लौट आयें। पांच बार दोहराए।

अब सिर के पिछले भाग पर हथेलियां रख सिर को आगे की ओर धकेलें लेकिन गर्दन की पेशियां तानकर सिर को आगे न जाने दें। पांच तक गिनें फिर आराम की मुद्रा में लौट आयें। तीसरी क्रिया में बांई हथेली बांई कनपटी पर रख कनपटी को अंदर की ओर धकेलें पर गर्दन की पेशियां तानकर इसे निष्क्रिय कर दें। पांच तक गिनें फिर आराम की मुद्रा में लौट आएं। फिर यही क्रिया पांच बार दाईं ओर दोहराएं। ये सरल व्यायाम नियम से करें और इन्हें जीवनचर्या का अंग बना लें।

सरवाइकल स्पांडिलाइटिस में तकिया लगाने की आदत को छोड़ना ही पड़ता है?

कतई नहीं। सिर्फ इतनी सावधानी बरतनी है कि अगर ऊंचा तकिया लगाने की आदत है तो उसका मोह त्याग दें। बेहतर होगा कि दो इंच मोटाई का रूई का तकिया लगाना शुरू कर दें, यह गर्दन के स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। बाज़ार में विशेष सरवाइकल तकिये भी उपलब्ध हैं जिन्हें लगाने से गर्दन पर ज़ोर नहीं पडता।

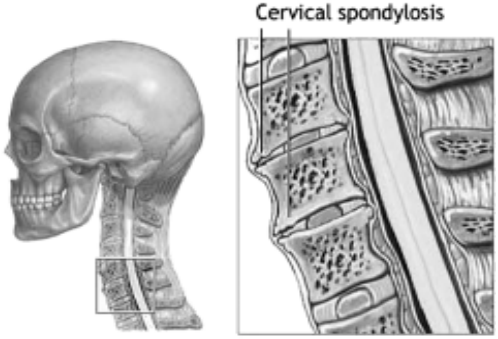

शेर और बकरी

❑ अशोक भाटिया

कहा जाता है कि हमारे देश में कभी शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीते थे। इसमें हालांकि कई पेंच है। एक सवाल यह उठता है कि जिस घाट पर वे इकट्ठा पानी पीते थे वहाँ दोनों में से पहले कौन आता था।

यह सवाल मैंने अपने एक साथी से पूछा, तो वह बोला, 'तुम भी अजीब हो। पहले तो बकरी आएगी, तभी तो उसे देखकर शेर आएगा?

प्रश्न यह है कि ऐसी क्या मजबूरी थी कि शेर और बकरी एक ही घाट पर पानी पीते थे? इन्सानों ने अपनी जाति के हिसाब से अलग-अलग कुंओं की सुविधा बना रखी थी पर पशु-जगत के साथ यह अन्याय क्यों? क्योंकि पशु-समाज मनुष्य जगत की नकल नहीं करता।

भरपेट मांस खाकर शेर पानी की तलाश में निकल पड़ा। भटकता हुआ वह जंगल से बाहर निकल आया। थोड़ी दूर पर एक कस्बा था, शेर उधर ही चल पड़ा। कस्बे के बाहर कुछ बकरियाँ एक घाट पर पानी पी रही थीं। शेर ने कुछ देर प्रतीक्षा करना ठीक समझा। पानी पीकर सारी बकरियाँ तो चल पड़ीं सिर्फ एक बकरी रह गई।

शेर चुपके से उसके निकट आकर बोला, 'थोड़ा सा पानी मैं भी पी लूं?'

बकरी ने सोचा, 'मुझे इतना महत्व दे रहा है। इतना तो चुनावों में उम्मीदवार भी जनता को नहीं देता।' उसने आंख झपकाकर स्वीकृति दे दी, हालांकि घाट उसका नहीं था। इस प्रकार शेर ने शिकार के लिए नये घाट पर अपनी जगह बनाई।

आखिरकार युग बदला। केबल संस्कृति ने पांव पसारे। एक लोकप्रिय चैनल का एक फोटोग्राफ़र उस दृश्य की खोज में निकल पड़ा, जिसमें शेर और बकरी एक घाट पर पानी पी रहे हों। कई दिन तक वह मारा-मारा फिरता रहा।

आखिरकार वह एक छोटे से कस्बे के बाहर पहुंचा। वहां एक बकरी एक घाट पर पानी पी रही थी और एक शेर घाट के निकट पहुंच रहा था। ज्योंहि शेर ने अपना मुंह पानी में डाला, फोटोग्राफर ने तुरंत फ़ोटो खींच ली। मौका पाकर बकरी तो वहां से खिसक ली पर फोटोग्राफर से नहीं रहा गया। उसने शेर से पूछा, 'बकरी को इतने निकट पाकर भी आपने उसका शिकार क्यों नहीं किया?'

शेर ने मीडिया को महत्व देते हुए कहा, 'यह बकरी अभी जाकर अपनी सहेलियों से मेरी उदारता का गुणगान करेगी। इस प्रकार से बकरियां मेरी एफ-डी (फिक्स डिपाजिट) हो गई हैं।'

फोटोग्राफ़र चलते-चलते इस सच्चे इतिहास पर चिंतन करने लगा। उसने कैमरे से वह रील निकालकर फेंक दी।

-1882, सेक्टर-13, अरबन स्टेट, करनाल

सेवा का अभिप्राय

स्वामी प्रज्ञानन्द महाराज का गंगा किनारे भव्य आश्रम था। एक सुबह वे मित्र संत के साथ गंगा के बीचों बीच स्नान कर रहे थे। वहीं से उन्होंने अपने शिष्य को आवाज़ लगाई, 'मुक्तेश्वर.....ओ मुक्तेश्वर.....!' आवाज़ सुनकर मुक्तेश्वर दौड़ा-दौड़ा आया। पूछा, गुरु जी, क्या आज्ञा है? स्वामी प्रज्ञानन्द बोले 'बेटा मुझे गंगा जल पीना है।' मुक्तेश्वर आश्रम गया, लोटा लाया। गंगा किनारे की बालू से मांज कर लोटा चमकाया। फिर गंगा में उतरा। स्वामी जहां खड़े थे, वहाँ जाकर लोटा पुनः धोकर गंगा का जल भर कर गुरु जी को थमाया। वह जानता था कि स्वामी जी बहती गंगा का जल पीते हैं। स्वामी जी ने अंजुलि भरकर लोटे से गंगा जल पिया। मुक्तेश्वर खाली लोटा लेकर लौट गया। यह देख स्वामी प्रज्ञानन्द के मित्र संत हैरान हुए। उन्होंने पूछा, आपको यहीं का गंगाजल हाथों से पीना था, तो मुक्तेश्वर को बुलाने की क्या ज़रूरत थी? आपने लोटे से हाथों में ही पानी भर कर पिया, फिर मुक्तेश्वर से परिश्रम क्यों करवाया? 'इसी बहाने मुक्तेश्वर को सेवा दी। सेवा इसलिए दी, ताकि उसका अंतःकरण शुद्ध हो जाए और ब्रह्विद्या उसे पच जाए', स्वामी जी सहज भाव से बोले।

GAYATRI MANTRA

❑ Dr. M. P. Sharma

THEORY AND ITS SCIENTIFIC APPROACH

In every Hindu family the *Gayatri Mantra* is chanted with great reverence. The meaning of this mantra, as has been handed down through generations, is more or less the same in almost all the books. It is something like this "O Lord! You are blissful, true and omniscient, you are all pervading, omnipresent, the urge and the light of all; you are an ocean of divine energies, your immeasurable energy is reflected in the sun, you are the creator of all, the protector of all, you are greater than the greatest. We pay our respectful obeisance to you and invoke your blessings to cleanse our minds. Bless us with divine thoughts, strength and the urge to follow the right path by body, mind and words".

Infact this can at best be said to be the gist of the *mantra* but not its true meaning because all these words like creator, protector, ocean of divine powers donot apper in the original text. Then where from have these meanings been derived?

With all the adjectives it has become a prayer whereas the *Gayatri mantra* was a simple means discovered by Rishi Vishwamitra to praise and worship the formless God by means of similes and symbols.

The Modern Theory:

There are a trillion suns like ours in our galaxy, some of them are many times bigger than our sun. All the suns are complete universal families within themselves like our solar system. Our sun alongwith its own family takes one complete round of the centre of the mother galaxy in 225 million years. Roughly there are ten billion galaxies like ours. All these galaxies are moving at a speed of 20000 miles per second towards the infinite. The lenghth of our galaxy is one lakh light years. Our sun is at a distance of 32000 light years for the centre of our galaxy. An ordinary ceilling fan moving at a velocity of 900 revolutions per minute makes loud noise. From this it can be easily imagined what a colossal noise must be produced by the movement of this huge universe moving at a velocity of 20000 miles per second. This noise was heard by the seers in their *Samadhi* and they named it *Pranava* (Pran=energy+vapu=body) and described it as *Nad Brahma* or the huge noise. They also named it as *Udgeeth* or the melodious music originating high above in the space.

The Composition of the Mantra:

The Sanskrit language is a very scientific language and suited to biocosmic set up. Composition of Mantras in this language has some special characteristics. The seers visualised in their *Samadhi* the Phonetic composition of all the letters of its alphabets and then wrote them down. In the composition of the *mantras* coded symbolic style was used. Unlike prose very few words and complete sentences were used. An effort must be made to assimilate the meaning of the words in the mantras. The, discovery of the name-*Om Bhur BhuvahSwah Bhur* means our earth, *Bhuvah* stands for the planetary system of the nine planets and *Swah* is used for all the galaxies moving at high velocity in the space. Our earth, the moon and all the planets are incessantly moving around the sun while at the same time revolving on their own axis. Obviously all the millions and billions of galaxies are similarly running towards the infinite at very high velocities and a very loud noise is produced

with their vibration. When the seers heard this noise in their trance, they instinctively ejaculated Oum Oum. When they set out in search of the Creator of the universe, they knew that the creator was a very mighty entity but invisible and formless. Rishi Vishwamitra suggested that this noise "Oum" which they heard should be accepted as the name of Creator, to which all the 80000 research scholars agreed.

Since God is eternal, that is without any beginning or end, His name should also be such which may denote His eternal nature. This song Oum has been there since times immemorial and will remain eternally. It is also called *"Pranava"* because this perpetual sound by vibration in the space is a source of energy, that is Prana and is balancing the whole evergy in the universe. Therefore being the body *(Vapu)* of the every *(Prana)* it is called Pranava.

The Physical Perceptible form of God:

The whole physical world is produced from light and it also ends in light, That is, light is the first physical form of God. The seers seriously thought over and realised the necessity of a physical form for worship and their realisation resulted into this mantra. This mantra and the mantra no. 13, Chap. 2, /Valli.4 of the Kathopanishad appear to mean that the seers directed the disciples to achieve the formless through a form and probably this led to establishment of the twelve Jyotirlingas throughout India. The discovery of the Gayatri Mantra led to the idol worship first as a solid symbol (linga) and other idols keeping in view a public mentality requiring a physical base for anything. Thus the *Gayatri Mantra* formed a foundation for future methods of worship and is known as *Mahamantra.*

Guidance for worship

Bhargo=light, *Devasya*=of God and *Dhimahi*=mediate upon.

We now consider translating the theory into practice.

After defining the formless God by giving it a name and form, the seers enjoin that the devotees should meditate upon that God who is manifested as light.

Dhiyo means intelligence, *Yo*=who, *Nah*=us, *Prachodayat*=Urges us to follow the right path.

The greatest hurdle in meditation arises when the mind being fickle wanders hither and thither deviating from its right course. Therefore, the seers felt that the task of controlling the fickle mind is not easy and cannot be achieved whithout the blessing of the Almighty. Therefore, by these words they invoke God to urge the mind to follow the right path so as to attain Him. The practice of yoga, meditation and trans is the greatest discovery of the Indian seers not to be found anywhere else in the world.

Th Method of Sagun Upasana:

This mantra was discovered in the era when all the scholars accepted God as formless. The *Gayatri Mantra* is a research mantra by which seer Vishwamitra adopted the *Sagun Upasana* or the process of worship of the Almighty with a definite form. Any new idea has to face resistance and opposition in the beginning and it appears that this new idea of *Sagun Upasana* opposed by seers like Vashistha advocating the *Nirgun Upasana.* Such opposition is very common in modern times too, because those who oppose do not realise that it is a simple mathematical equation-a course to search for the unknown through the known. Seer Vishwamitra could succeed in establishing his view point after facing volleys of opposition, criticism and after bringing to naught the hundreds of opposing ideas like those of Vashishth which have been symbolised as murder of hundred sons of Vashishtha.

Ultimately Vashishtha had to recognise the supremacy of Vishwamitra and endowed him with the title of *Brahmarshi* thereby giving the public recognition to his principle. The

supremacy of the *Gayatri Mantra* has been accepted by Lord Shri Krishna in the Bhagwadgita in the words "Gayatri *Chhandsameham".*

The traditional meaning of the *Gayatri mantra* must have been given at a later stage by the scholars. After all the ultimate goal is the achievement of the supreme Brahma or God whether we accept Him as formless, Nirgun or one with a form endowed with ideal qualities of energy, knowledge, light etc. Hence the current traditional meaning is also acceptable. But infact seer Vishwamitra paved the way for realisation of the Supreme power, the formless God through the Gayarti Mantra but majoirty of people today are not able to grasp the real purport and think that merely by repeatedly chanting the mantra they can purify their inner and outer selves and attain God.

धर्म

❑ चन्द्र किशोर मदन

जब देश आज़ाद हुआ तो देश का संविधान बना। समझदार लोगों ने इसे बनाया। उनका कोई दोष नहीं। लेकिन क्योंकि सदियों से अपने यहाँ धर्म और सम्प्रदाय पर्यायवाची शब्द हो गये, इसलिए एक बड़ी भ्रांति हुई, भूल हुई। यह निश्चय किया गया कि हमारी सरकार ''सेक्यूलर'' सरकार होगी। अंग्रेज़ी भाषा में सेक्यूलर कहा, वहाँ तक तो ठीक। परन्तु हिन्दी में धर्म-निरपेक्ष शब्द चल पड़ा, यह भूल हुई। राज्य धर्म-निरपेक्ष कैसे होगा। कहना चाहते थे कि राज्य सम्प्रदाय-निरपेक्ष होगा। वह किसी सम्प्रदाय का पक्षपात नहीं करेगा। अच्छा राज्य किसी सम्प्रदाय का पक्षपात नहीं करता, परन्तु धर्म-सापेक्ष तो होगा ही; धर्म निरपेक्ष कैसे होगा। देश की दंड-संहिता है। कोई हत्या करेगा उसे दंड मिलेगा, कोई चोरी करेगा उसे दंड मिलेगा, कोई व्यभिचार करेगा उसे दंड मिलेगा, कोई समाज की व्यवस्था को दूषित करेगा उसे दंड मिलेगा। यही तो धर्म है। मन को मैला करके शरीर और वाणी से दुष्कर्म करें, तो अधर्म ही अधर्म है। जिसने धर्म को तोड़ा, धर्म के नियमों को तोड़ा, उसे दंड मिलना चाहिए। इसलिए राज्य धर्म-सापेक्ष ही है, धर्म-निरपेक्ष नहीं है।

भारत में ढ़ाई हज़ार वर्ष पहले धर्म की परिभाषा थी - **'धारेती' ति धम्मो'** धारण करे सो धर्म। क्या धारण करे? किसको धारण करे? तो समझाया **'अत्तनो पन सभावं धारेती' ति धम्मो'**। अपना स्वभाव धारण करता है, अपना लक्षण धारण करता है, इस अर्थ में धर्म कहलाता है। अग्नि का धर्म है जलना और जलाना। यानि अग्नि का स्वभाव है जलना-जलाना। स्वयं जलती है और उसकी लपेट में जो आ जाए उसे भी जलाती है, तभी अग्नि है। इसी प्रकार बर्फ का धर्म है शीतल होना और शीतल करना। यह उसका स्वभाव है।

धर्म का महान् अस्तित्व है परन्तु उसके साथ ये विशेषण लग गये तो धर्म नहीं रहा। जिस दिन धर्म को हिन्दू-धर्म कहना शुरू कर दिया, उस दिन **'हिन्दू'** प्रमुख हो गया। धर्म नेपथ्य में चला गया। जिस दिन धर्म को बौद्ध धर्म कहना शुरू किया **'बौद्ध'** प्रमुख हो गया, ध र्म खो गया; जैन धर्म कहना शुरू किया, **'जैन'** प्रमुख हो गया, धर्म लुप्त हो गया। धर्म को इन विशेषणों

..... **शेष 88 पृष्ठ पर**

THE POWER OF 3 LITTLE WORDS

Some of the most significant messages, people deliver to one another, often come in just three words. When spoken or conveyed, those statements have the power to forge new friendships, deepen old ones and restore relationships that have cooled. To quote Samuel Richardson, "The little words in the Republic of Letters, like the little folks in a nation, are the most useful and significant."

The following three-word phrases can enrich every relationship:

I'LL BE THERE: Being there for another person is the greatest gift we can give. When we are truly present for other people, important things happen to them and to us. We are renewed in love and friendship. We are restored emotionally and spiritually. 'Being there' is at the very core of civility.

I MISS YOU: Their domestic life will be more blissful and sweet if couples simply and sincerely say these three words to each other sometimes. This powerful affirmation tells partners they are wanted, needed, desired and loved.

I RESPECT YOU : Respect is another way of showing love. Respect conveys the feeling that another person is a true equal. It is a powerful way to affirm the importance of a relationship.

MAY BE YOU'RE RIGHT : This phrase is highly effective in diffusing an argument and restoring frayed emotions. The flip side of "maybe you're right" is the humility of admitting "maybe I'm wrong."

PLEASE FORGIVE ME: Many broken relationships could be restored and healed if people would admit their mistakes and ask for forgiveness. All of us are vulnerable to faults, foibles and failures. A man should never be ashamed to own he has been in the wrong, which is but saying, in other words, that he is wiser today than he was yesterday.

I THANK YOU : Gratitude is an exquisite form of courtesy. People who enjoy the companionship of good, close friends are those who don't take daily courtesies for granted. They are quick to thank their friends for their many expressions of kindness.

COUNT ON ME : "A friend is one who walks in when others walk out." Loyalty is an essential ingredient for true friendship; it is the emotional glue that bonds people. Those who are rich in their relationships tend to be steady and true friends. When troubles come, a good friend is there, indicating "you can count on me".

LET ME HELP: The best of friends see a need and try to fill it. When they spot a hurt they do what they can to heal it. Without being asked, they pitch in and help.

I UNDERSTAND YOU : People become closer and enjoy each other more if they feel the other person accepts and understands them. Letting others know in so many little ways that you understand him or her is one of the most powerful tools for healing your relationship.

GO FOR IT : Some of your friends may be non-conformists, have unique projects and unusual hobbies. Support them in pursuing their interests. Rather than urging your loved ones to conform, encourage their uniqueness -- everyone has dreams that no one else has.

[Compiled]

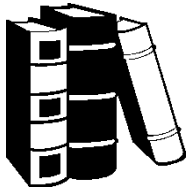

READING AND WRITING HABITS ARE DYING

❑ **Prof S. Dandapani**

With the ubiquitous presence of computers all around and even tiny tots manipulating the mouse or tapping the keyboard, the good old habits of reading books or writing letters have almost become extinct. E-mailing has replaced personalised handwritten letters.

My uncle, a renowned surgeon, who retired as the Dean of Stanley Medical College, Madras used to write post-cards with the same care he used the surgical instruments for appendicitis operation! Alas, he is no more, but his letters are still my priceless possessions! Way back in the 1930's during my primary school days, my teachers trained me in the three R's - reading, writing and arithmetic.I would take the spelling test as well as simple additions and subtractions on both sides of the slate and receiving marks from my teachers, run home safeguarding my achievement, to show to my mother, the recognition I received from my teacher, and get a "laddu" as a reward!

To get ten out of ten marks would be like scaling the Everest to the tiny tots! I would clean the slate only the next day because my uncle also should see my performance and pat me on my back with his *"Shabash!"*

Whenever I had bungled and received poor marks I would get back home with a clean slate so as to avoid humiliation.

We used a drawing notebook, rectangular shaped and

made of thick sheets of paper that could withstand hard rubbing with erasers. Pencil and rubber must be compulsorily brought to the drawing class, failing which we would receive mild rebuke. I used to beg, borrow and steal my neighbours erasers. Poor quality erasers would make smudges and even make holes. Soon after this exercise, the teacher would entertain us with stories of 'Vikramaditya'. He was a master story-teller!

We used to have three-lined notebooks for transcription. The same sentence should be written one below the other for the whole page which would be evaluated by the teacher with a tick-mark and also remark, "good" or "improve"! I owe my primary school teachers a lot for disciplining me by giving this gruelling exercise, when my fingers were slender and nimble! I would envy some of my classmates who could write elegantly, almost like print.

We had "loud-reading" classes as well as "silent-reading" classes to improve English pronunciation. Each student must read a paragraph and pass on the task to the next student. The teacher would be watching whether every student was attentive. He would sometimes ask a student seated in the back row to continue the passage.

If we were to be perplexed either because of inattentiveness or failure to bring his textbook, he would be given a dressing-down. The usual punishment for such minor lapses would be to stand up on the bench for some time. The presence of a few girls in the class and their giggling would be all the more shameful.

Similar lapse on the part of girls would receive only a mild rebuke, but never would a girl student be asked to stand up on the bench! What a partiality! Some girls would break down so as to elicit sympathy.

Reading a difficult prose would be really taxing. It would expose our awful pronunciation. I would split a phrase as

"Once ....upon .....a....time" which would invite the wrath of my teacher. I would be asked to repeat: "One upon a time"as a cluster because these were not discrete words but a "phrase". It took me a long time to understand a phrase.

In silent reading, a deadly silence would prevail. Each student would be reading silently or at least pretending to do so. Our teacher would be walking up and down in the class so as to check whether we are absorbed or absolved! Some of us would quietly go to sleep only to be awakened when the bell rang! At home, every morning, I had to read aloud every book, whether I understood or not! It must be audible to my uncle in the neighbouring room. With my classmates in the neighbourhood, loud reading of history and science would fill the whole street. People at home must be convinced that we are studious and committed!

Memorisation of multiplication-table was a "must" in our days. We must demonstrate our prowess in the class by smartly answering 24 as soon as the teacher posed the problem 3X8=? This exercise during my formative years is helpful to me to come out with the answer 256 as soon as I hear 16x16=?

I do not know whether such a rigorous exercise is a stipulation in present-day schooling. Children, these days, are rather pampered with fancy toys and charts that were unheard of during my infancy and childhood. Our teachers were benevolently authoritarian and they believed in disciplining us. None would enter the classroom with slippers because we were told that schools are temples of learning. It would be sacrilegious to enter the classroom with footwear. Even our teachers would be barefooted!

Whatever be the paradigm-shift in the mechanics of teaching and learning, the habits of reading and writing should not be sidelined. Excessive viewing of the computer screen might be harmful to physical and mental health.

21 REASONS TO READ BOOKS & MAGAZINES

1. Help to travel around the world in the cheapest way.
2. Develop your personality.
3. Provide food for thought.
4. Make you laugh and think.
5. Stimulate creativity.
6. Bring out writing talent.
7. Satisfy your curiosity.
8. Can be used anytime, anywhere.
9. Provide entertainment, when others fail.
10. Help to know the 'Whys' and 'Hows' of everything.
11. Keep you updated with facts and figures.
12. Make the best of friends.
13. Broaden your horizon.
14. Provide mental and physical relaxation
15. Intellectually satisfying activity.
16. Provide spiritual experience.
17. Build your self-esteem.
18. Help and encourage your imagination to soar.
19. Make you smarter and wiser.
20. Take you to a 'world of dreams'.
21. Help in achieving 'life goals'.

A TOURIST AND A PILGRIM

❑ **Dr. Pradeep Kumar**

There once was a king who made a yearly *Teerth Yatra* (pilgrimage) to a remote mountain shrine. To reach the shrine, the king had to cross a dense forest on foot. The forest paths were rugged and treacherous and there was always the danger of slipping and injuring oneself. At night, the king had to sleep on the hard ground, with little protection from the elements. So one day he asked his Prime Minister to make arrangements to build a road for his chariot and a house with good food where he could stay in comfort while he completed the pilgrimage.

The Prime Minister advised the king against such action because during pilgrimage one was supposed to live according to nature's way, not seeking comforts. Also, the construction of a chariot road and a house could disturb the forest.

The king refused to follow the Prime Minister's advice. A chariot road and a palatial house with all comforts were built in the forest. Initially, the king was happy as it was easy for him to reach the shrine. But meanwhile profound changes started happening in the forest. Because of the road construction, many stones in the ground were displaced, obstructing the flow of the water streams which fed the main river of the kingdom. The result was a water crisis, as the river was the main source of drinking water to people and for irrigation of the fields. Many people were entering into the forest and carelessly trampling plants and flowers and killing and scaring away the birds and animals.

As the forest became more and more damaged, most of the birds, butterflies and animals left the forest. At the same time, the king was not feeling as fulfilled with the pilgrimage as he used to. Although it was easy for him to reach the shrine, it was too quick a journey and he didn't have sufficient time to enjoy nature, unwind from the worries of his kingdom and feel rejuvenated. He took his problems to the pilgrimage and before he could free himself from them, he was back to his problems again.

In this story, the king was initially performing a *Teerth Yatra* (pilgrimage) but decided to change it into a Yatra (a trip or journey) for pleasure and the result was a disaster.

In our times there are millions of rich people living like kings on earth. They are indulging in *Yatra* without restraint and they don't have an advisor like the Prime Minister. Although *Yatra* (trip/travel) and *Teerth Yatra* (pilgrimage) are both journeys, they are different in many fundamental ways. *Yatra* means to take a journey, moving or travelling with a purpose and restraint. An uncontrolled and undisciplined movement or journey is a bad *Yatra* or not a *Yatra* at all.

Although the *Teerth Yatra* is also a *Yatra,* it is done to create a bridge to the inner being, to make a path to the hidden, unknown side of life. The *Teerth Yatra* helps in bringing about a totality of perception, that is why great spiritual teachers in the Jain religion are called *Teerthankars. Teerthankar* means the maker of the bridge or a path which will help in crossing the ocean of conditioned *Samsara* of our ordinary mind, which is filled with conflict, fear and sorrow. Such crossing over will bring us to the experience of Mukti or freedom and peace within to function in the world with harmony and equanimity.

Since the human mind craves for constant excitement and pleasure, an ordinary *Yatra* provides so much- new tastes, new smells, new sounds/and new sights. But of course the excitement of a *Yatra* does not bring prolonged contentment and fulfillment. As soon as the stimulation is

over, the mind again starts craving for new pleasures. In fact, over time the search for excitement intensifies, due to the feature of mind known as habituation. Habituation means a gradual reduction in the response to repetitive stimulation, leading to a never-ending quest to find new and novel stimuli, whether it be taste, sights, smell, touch or any other tool of pleasure.

Yatris demand homely comfort in remote places and thus they often would like to enjoy whatever they don't have at home which may include food, alcohol, transportation, air-conditioning, swimming-pool and sports facilities. Bringing such comforts to a remote area is going to change the local culture and natural environment forever in a destructive way.

But the Teerth Yatra is different from the ordinary Yatra. The Teerth Yatra is a journey with awareness, in which the person travels consciously both in the inner and outer world. Teerth Yatri is neither drowned in pleasure nor invites pain and sorrow intentionally. Physically, this type of yatra is done with leisurely pace and there is no demand for undue pleasures beyond whatever is needed for comfortable survival. During the Teerth Yatra one walks lightly and with humility, keeping a restraint over one's desires.

We may ask what is the aim of any true pilgrimage. It is to make life itself a pilgrimage and to become a pilgrim of life, living in awareness of both the outer and inner world. Thus, the pilgrim leaves the earth as it was found, undisturbed and blossoming. Such a pilgrim is one who truly cares for family, community, country and nature itself. That is true compassion and true worship, because these pilgrims leave the earth in a healthy state where the coming generation of plants, animals and human beings may live and prosper. A true pilgrim leaves a sense of abundance on this precious earth.

- Hamilton- Ontario Canada

NAIL IN THE FENCE

● **Neeraj Gupta**

Make sure you read all the way down to the last sentence.(Most importantly the last sentence)

There once was a little boy who had a bad Temper. His Father gave him a bag of nails and told him that every time he lost his temper, he must hammer a nail into the back of the fence. The first day the boy had driven 37 nails into the fence,

Over the next few weeks, as he learned to control his anger the number of nails hammered daily gradually dwindled down. He discovered it was easier to hold his temper than to Drive those nails into the fence. Finally the day came when the boy didn't lose his temper at all. He told his father about it and the father suggested that the boy now pull out one nail for each day that he was able to hold his temper.

The days passed and the young boy was finally able to tell his father that all the nails were gone.The father took his son by the hand and led him to the fence.He said, "You have done well, my son, but look at the holes in the fence. The fence will never be the same. When you say things in anger, they leave a scar just like this one. You can put a knife in a man and draw it out".

"It won't matter how many times you say 'I'm Sorry', the wound is still there. A verbal wound is as bad as a physical one. Friends are very jewels, indeed".

"They make you smile and encourage you to succeed.

They lend an ear, they share words of praise and they always want to open their hearts to us."

Show your friends how much you care. Send this to everyone you consider a friend, even if It means sending it back to the person who sent it to you. If it comes back to you, then you'll know you have a circle of friends. You are friend and I am Honoured!

Now send this to every friend you have!! and to your family. Please forgive me if I have ever left a "hole" in your fence (,") **It's** your **attitude and not your aptitude that determines your altitude.**

2B-72, Nalanda Evershine Nagar,
Malad (West) Mumbai

..... **पृष्ठ 77 का शेष**

की ज़रूरत नहीं होती। धर्म कभी हिन्दू नहीं होता, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुस्लिम, सिक्ख या परसी नहीं होता। ये तो कुछ लोगों के समूह हैं। ये किसी प्रकार के रहन-सहन वाले, खान-पान वाले दार्शनिक मान्यता मानने वाले लोगों के समूह हैं, संगठन हैं, जमातें हैं, सम्प्रदाय हैं जो हिन्दू, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुस्लिम आदि हो सकते हैं परन्तु धर्म नहीं हो सकते। धर्म से इनका दूर-दूर तक कोई सम्बन्ध नहीं है।

आज दुर्भाग्य यह हो गया कि **'धर्म'** शब्द सम्प्रदाय का पर्यायवाची हो गया। देश के लिए यह बहुत बड़ी खतरनाक बात हुई। आज से दो हज़ार वर्ष पहले कोई व्यक्ति धर्म को हिन्दू धर्म नहीं कहता था, जैन धर्म नहीं कहता था। प्राचीन भारत की भाषाओं में ये शब्द ही नहीं थे परन्तु आज सम्प्रदाय और धर्म पर्यायवाची हो गये हैं।

संसार में सबकुछ बदलता है लेकिन प्रकृति के नियम नहीं बदलते **'एस धम्मो सनन्तनो'** धर्म हमेशा सनातन होता है।

-युगान्तर प्रकाशन, स्टेशन रोड, बेल बनवा, मोतीहारी (बिहार)

THE PLEASURES OF GRANDPARENTING

❑ **Suresh Chandra**

"Generally old age is a period of stagnation but grandparethood presents a chance of generating something new by creating a possibility of caring for the newest generation more prudently than we did for our own children."

-Ericson and Kivnic

In the films of olden days a story was repeated many times . A couple in love wants to get married . Their orthodox parents oppose it. The couple leaves home , marries, starts to live separately and soon a baby arrives. The old parents, on hearing the news , visit the couple and all anger melts away as soon as the grand parents hold the new born in their arms . The baby's toothless , innocent smile disarm them , the family reunites and they live happily ever after.

What is so grand about grandparenting and so endearing about the role which makes the grand parents forget all the complaints and anger against their children ? The most precious gift that a grandparent receives is the chance to watch and participate in the growth of the child , a child who is his own flesh and blood . He receives unconditional acceptance and affection and also loves in return . Their own childhood is revived in the form of the little ones and they relish it so avidly .

The feelings that old people express for their grandchildren are warmest and happiest ones . They can love them in a completely disinterested and wholly generous

manner because they have neither rights nor responsibilities.

The friendship of the young is very valuable for the old people. It gives them a feeling that the times in which they are living are still their times . It revives their own youth and is the best defence against the gloom that threatens old age . Actually grandparenthood is one of the few ready made roles available to the aging person at a point in his life when his former roles are lost or decrease in significance . The more involved grandparents have been found to be having more life satisfaction. Such grandparents have more friends and are more active in community organizations .

We can be fans of our grandchildren. It is a fun for us to listen to their meaningless chatter . They love us because we are ready to listen to them , enjoy their games, toys, television shows and games. We grow as they grow and discover a new world of innocent childhood . Not only that but they can have a very special role to play in the life of their grandchildren if they so wish .Scientific studies have shown that where the contact between the two has been frequent and close , grandparents help determine the values , opinions and ideals of their grandchildren . They transmit a sense of family continuity and history better than any one else , an appreciation of family tradition that serves the grandchildren throughout their lives and gives them a feeling of belonging .

More importantly , the grandparents have the benefit of interacting with their grandchildren on a level that is far removed from the day to day responsibilities of the parents . This makes it easier for them to develop a closer bond with their grandchildren . They can guide them with their wisdom , experience and long view of life . They can also share their passions with the new audience and see the world in a new way through younger eyes .

There have been many changes in the last fifty years

or so which has made grandparenting a whole new ball-game . If you look at an image of a grandmother or a grandfather from the 1950s or earlier, it is likely to show a grey-haired old woman with her knitting or a bald -headed old man with a stick . This has little relevance now . With the longevity of life increasing and better health care , the grandparents in their fifties and sixties look younger ,lead an active life and look forward to live for many more years. They can take the art of grandparenting to new heights .

Finally a word for the middle aged parents . They will impede the evolution and the development of the human species if they neglect the aged . Keep in mind , children are very keen observers . I need not repeat the story of the child who preserved the old , broken cup in which the old grandfather was served tea so that he may use it when his own father will become old.

When the old ones depart they leave a 'beauty' behind which is the inheritance of the younger generation . A culture is known by the way it treats its aged . The human race is superior to other species because it respects , loves and preserves its fathers and grandfathers.

Remember

We do not have elders because we have a human gift for keeping the weak alive; we are human because we have elders.

- 7UGF,Prerna Apartments
Gandhi Nagar GHAZIABAD

THE QUEST FOR GREATNESS

Noble Peace Prize winner Dalai Lama was asked: "Can anyone become great? Are they born great or can they achieve greatness?"

Dalai Lama replied, "I think all human beings have the same potential. But using your brain properly and having warm-heartedness, sense of responsibility, sense of compassion, make a person something, something great and something useful."

The Characteristics of Greatness

1. The famous great ones contributed something to the society. Their views and actions influenced others. Their lives counted. They followed their "callings." Their influences lasted for generations. They stirred our souls and lifted our vision.
2. Each had a cause for which he devoted his life and may be even sacrificed it. Each lived through adverse circumstances but prevailed above them.
3. The religious heroes achieved greatness by spreading truth and virtue. They sacrifice for living their beliefs. They, subdued their natural tendencies to become more Godlike.
4. Much of Mahatma Gandhi's greatness came from his striving for perfection. He pushed himself always to improve. He lived the very best life he could live. He taught by the example of his life.
5. Very often challenge produces the opportunity for greatness. U.S. Civil war made Abraham Lincon great and National Liberation movement in South Africa put Nelson Mandela on the pedestal of greatness.

What about you & me? What can we do to achieve greatness?

- Care about your reputation, but care more about your character.
- Strive for success by bringing others with you, not by, over riding them.
- Face challenges boldly and bravely.
- Find a way to serve, to make sacrifice in service for others.
- Stir the hearts of others as you lift them.
- Adopt a cause that can excite your passion.
- Over come the weakness of character, don't give in to them.
- See the greatness in those close to you.
- Identify the gaps between your potential and your current reality and work to narrow that gap.
- Recognize that life consists not of a series of circumstances but of a series of choices.

- Compiled

Think About This

People are often unreasonable,

self-centred: Forgive them, anyway.

If you are honest, people may cheat you:

Be honest, anyway.

What you spend years to build, someone could destroy overnight: Build anyway.

The good you do today, People will often forget tomorrow: Do good, any way.

You see, in the final analysis it is between you and God

It never was between you and them, anyway!

पाठकनामा

'ज्ञान प्रभा' का अप्रैल-जून 2008 अंक प्राप्त हुआ। पत्रिका के एक ही अंक में एक ही विषय पर अनेकों लेख फिर भी पुनरुक्ति नहीं, विरोधाभास नहीं। हिन्दू धर्म का वास्तविक अर्थ, उसके मूल तत्व, उसमें ईश्वर की अवधारणा, ईसाई व इस्लाम मज़हब एवं हिन्दू धर्म में मौलिक अन्तर, हिन्दू जैन धर्म में समता एवं वर्तमान में इस धर्म के पुनर्जागरण के पुरोधाओं के विचार व उनके द्वारा किये गये कार्यो का विवरण तथा स्वास्तिक चिन्ह का महत्व एवं ओ३म् शब्द के विषय में विश्व के विद्वानों का अनुसंधान आदि अनेक विषयों पर सारगर्भित सामग्री पत्रिका में उपलब्ध है। सरल शब्दावली के प्रयोग के कारण साधारण पाठकों के लिए भी ग्राहय एवं गम्भीर चिन्तन के लिए प्रेरित करने वाली है। बहुत ढूढ़ा चांद में दाग़ नज़र नहीं आया। सब कुछ पढ़कर सुखद आश्चर्य हुआ। शायद ही अन्य पत्रिका में एक विषय पर इतनी महत्पूर्ण विषय सामग्री मिल सके।

- **राजेन्द्र कुमार,** 2/354, विश्वास खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ

****

'ज्ञान प्रभा' के 'हिन्दू दर्शन अंक' में ज्ञानवर्धन करने वाले लेखों का संकलन एवं सम्पादन करने के लिए सम्पादक मंडल की सराहना करता हूँ। प्रारम्भ में ऋग्वेद एवं यजुर्वेद के मंत्रों द्वारा दिव्य स्तुति तथा हिन्दू दर्शन पर लिखे गये प्रभावशाली लेखों को पढ़कर एक सुखद एवं अलौकिक अनुभूति हुई।

श्री सुरेश चन्द्र का लेख 'हिन्दू धर्म के मूलतत्व' में धर्म शब्द को परिभाषित किया गया तथा हिन्दू धर्म के मूलतत्वों का वर्णन किया गया है। वास्तव में धर्म की इस व्यापक परिभाषा में भारतीय वैदिक सनातन धर्म (वर्तमान में हिन्दू धर्म) ही सही अर्थ में एक सार्वभौम मानवधर्म है जिसका कोई एक पैगम्बर नहीं, जिसका प्रारम्भ किसी एक निश्चित तिथि से नहीं, जो किसी एक विशेष पुस्तक से निदेशित नहीं, जो किसी निश्चित् मत या विचार धारा से अनुशासित नहीं है। विश्व के अन्य वर्तमान यहूदी, ईसाई, कनफ्यूसियस, पारसी, इस्लाम एवं भारत में जन्में जैन, बौद्ध, सिख, शैव, वैष्णव, शावत, ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि को रिलीजन, मज़हब, सम्प्रदाय, पंथ, मत, मार्ग आदि का ही नाम दिया जायेगा, धर्म का नहीं। हिन्दू धर्म वास्तव में एक वैज्ञानिक, मानव जीवन पद्धति एवं जीवन शैली है।

प्रभाकर माचवे का लेख 'हिन्दू धर्म में ईश्वर की अवधारणा' बहुत ही विद्वत्तापूर्ण एवं ईश्वरीय दर्शन एवं अनुभूति कराने वाले तथ्यों से परिपूर्ण है जिसमें वैदिक सनातन धर्म (हिन्दू धर्म) में वेदों, उपनिषदों, दर्शनों, गीता से लेकर रामचरितमानस तक एवं वेद द्रष्टा ऋषियों, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग के प्रणेता वेद व्यास, बुद्ध, शंकराचार्य, रामानुज, तुलसीदास एवं स्वामी विवेकानन्द के विचारों को सम्बोधित किया गया है। परन्तु लेख के शुरूआत में हिन्दूधर्म की आयु केवल पाँच हज़ार वर्ष बताकर उसकी महान गौरवशाली प्राचीनता को ठेस पहुँचाई गई है। पाँच हजार वर्ष आंकड़ा पाश्यात्य इतिहासकारों की जानी बूझी साजिश का परिणाम है।

डा. धर्मवीर सेठी ने 'स्थितप्रज्ञता: गीता के संदर्भ में' लेख में बड़े सुंदर एवं सरल शब्दों में स्थितप्रज्ञ की मन:स्थिति की विवेचना की है। प्रो. योगेशचन्द्र शर्मा का ''आर्य संस्कृति का मंगल प्रतीक स्वस्तिक एक शोधपूर्ण, विद्वत्तापूर्ण एवं ज्ञानवर्द्धक लेख है। ए.पी.एन. पंकज ने अंग्रेजी लेख 'Hinduism' में वेद पुराण, महाभारत, मनुस्मृति गीता एवं रामायण के उदाहरणों से सिद्ध किया है कि हिन्दूधर्म में अहिंसा परम धर्म है तथा हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं है। डा. कर्ण सिंह के अंग्रेजी लेख Self Realisation में हिन्दू दर्शन उपनिषद् एवं वेदान्त दर्शन का सुंदर ढंग से विवेचन करते हुए आत्मा एवं ब्रह्म का दर्शन कराया गया है। डा. मधु पोद्दार ने अपने लेख 'हिन्दुत्व एवं जैन धर्म' में जैन मत का परिचय देते हुए बहुत सटीक लिखा है कि जैन धर्म किसी न किसी के द्वारा स्थापित पंथ है, धर्म नहीं। इस्लाम व ईसाई भी व्यक्ति विशेष के नाम पर शुरू हुए मज़हब हैं, धर्म नहीं। वास्तव में जैन पंथ तपस्वी तीर्थंकरों द्वारा प्रचलित वैदिक सनातन धर्म (हिन्दू धर्म) के अंतर्गत उसकी ही एक विचारधारा है, न कि अलग कोई धर्म।

श्री आर. के श्रीवास्तव का लेख 'हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण के पुरोधा' में चार महापुरुषों द्वारा किये पुनर्जागरण के तथ्यों को बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रेषित किया गया हैं। वरिष्ठता के क्रम में स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम सबसे पहले आना चाहिए था। 'The Hindu concept of time' की चौथी पंक्ति में 60 divine days को 360 divine days' होना चाहिये। भारतीय कालगणना के इस विषय को और स्पष्ट एवं विस्तार से वर्णन किये जाने की गुंजाइश है।

- **कृष्ण कुमार पाण्डेय**, 717/24, निराला नगर, रायबरेली (उ.प्र.)

सदस्यता फ़ार्म

मैं ज्ञान प्रभा का ग्राहक बनना चाहता हूँ :

❑ एक वर्ष रु. 100/-

❑ दो वर्ष रु. 200/-

❑ आजीवन सदस्य रु. 1500/-

GYAN PRABHA
(Quarterly)
ज्ञान प्रभा
(त्रैमासिक)

स्पष्ट शब्दों में लिखें :-

नाम.....

पता.....

नगर.....पिन कोड ☐☐☐☐☐☐ राज्य.....

टेलीफोन नं. ..... मोबाईल .....

तिथि ..... हस्ताक्षर .....

चैक नं./ ड्राफ्ट संख्या.....दिनांक.....रु .....का संलग्न है

(ड्राफ्ट/चैक भारत विकास परिषद दिल्ली को देय होगा)

(भुगतान के साथ इस कूपन को भी भेजें)

भारत विकास परिषद्

भारत विकास भवन (पावर हाउस के पीछे),

पीतमपुरा, दिल्ली- 110034

फ़ोन नं.- 011-27313051-27316049